

पुष्पांक-६६

❀ जैन ग्रन्थ संग्रह ❀

[भाग २]

●
मूल लेखक-

शतावधानी पं० धीरजलाल टोकरसीशाह

सम्पादक-

अगरचन्द नाहटा

द्रव्य सहायक-

जैन महिला मण्डल खरतरगच्छ जयपुर

प्रकाशक-

पुष्प्य स्वर्ण ज्ञानपीठ, जयपुर

वि० सं० २०३४]

For Personal and Private Use Only

[मूल्य दो रुपया

✽ जैन ग्रन्थ संग्रह ✽

[भाग २]

मूल लेखक-

शतावधानी पं० धीरजलाल टोकरसीशाह

सम्पादक-

अगरखन्द नाहटा

द्रव्य सहायक-

जैन महिला मण्डल खरतरगच्छ जयपुर

प्रकाशक-

पुष्प्य स्वर्णपूर्ण ज्ञानपीठ, जयपुर

सं० २०२४]

[मूल्य दो रुपया

—: अनुक्रमणिका :—

‘जेन कथा संग्रह’ भाग १ में भगवान ऋषभदेव, भरतबाहुबलि, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्ष्वनाथ और भगवान महावीर की संक्षिप्त जीवन कथायें हैं। इस दूसरे भाग में पन्द्रह कथायें हैं।

क्र०	विषय	पृ०
७	श्री गणधर गौतम स्वामी	१
८	चन्दनबाला	११
९	सौभाग्यशाली वीर धन्ना	२६
१०	बुद्धि निधान अभयकुमार	४०
११	अन्तिम केवली जम्बू स्वामी	४७
१२	महानकाय विजेता श्री स्थूलीभद्र	६७
१३	राजा श्रीपाल	८०
१४	महाराजा संप्रति	९३
१५	महाराजा कुमरपाल	१०२
१६	मन्त्री विमलशाह	११०
१७	महामन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल	१२१
१८	पेथड़कुमार	१३०
१९	दानवीर जगद्वशाह	१३८
२०	सच्चाशाह खेमा देवराणी	१४५
२१	दानवीर भामाशाह	१५१

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१—श्री जेन खरतरगच्छ उपाश्रय
शिवजी राम भवन (कुन्दीगर भैरों का रास्ता)
पो० जयपुर, (राजस्थान)

२—श्री अगस्त्य नाहटा
नाहटों की गुवाड़
पो० बोकानेर (राजस्थान)

प्रस्तावना

कथा-कहानी के प्रति मानव मात्र का सहज आकर्षण होता है। देश, काल, रुचि और योग्यतायें वय के अनुसार कथाओं की भाषा शैली आदि में अन्तर आता रहता है पर बाल, युवा, बृद्ध, नारी सभी कथा के रस से आनन्दानुभूति करते हैं। मनोरंजन के साथ २ कथाओं के द्वारा जीवन में महत्वपूर्ण संस्कार व शिक्षा भी प्राप्त की जाती है इसीलिए धार्मिक महापुरुषों ने भी नीति और धर्म को लोक जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए कथाओं का माध्यम अपनाया। लोक कथायें मौखिक रूप से चली आ रही थीं और पौराणिक कथायें भी श्रुति-परम्परा से प्रवाह रूप में प्रचलित थीं। उन सबको नीति या धर्म से जोड़कर जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का जो काम धार्मिक पुरुषों ने किया वह अद्भुत है। एवं कल्याणकारी है उपदेश की उपेक्षा कथा-कहानी के माध्यम से कही हुयी बात ज्यादा असर करती है। बालक तो प्रारम्भ से ही कथा-कहानी को सुनने में बहुत रस लेते हैं। अपने घर वाले माता-पिता, नानी, दादी आदि को समय मिलते ही प्रायः सन्ध्या के बाद, बालक-बालिकायें प्रेरित अनुरोध करते हैं कि उन्हें कोई कहानी सुनाई जाय।

वर्तमान के व्यस्त जीवन में हम बालक-बालिकाओं की उक्त जिज्ञासाओं को पूरी नहीं कर पाते। इससे बालकों के जीवन में एक रिक्तता और रस-शून्यता का अनुभव किया जा रहा है। विद्यालयों में वे यद्यपि विविध विषयों की शिक्षा लेने में व्यस्त हो जाते हैं, फिर भी उनके मन में रहता है कि कोई सुन्दर, रोचक और रस सित्त कहानी सुनाने वाला मिले और थोड़ी देर के लिये वे और सब बातें भूलकर उस कथा रस में सराबोर हो जायें। जब वैसा नहीं

हो पाता तो वे इधर उधर से कुछ कहानियों की पुस्तकें प्राप्त कर अपनी जिज्ञासा की आंशिक पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि सुनने में जो मजा आता है वह पढ़ने में नहीं आता क्योंकि श्रोता पर कहने वाले की शैली और मुखमुद्रा आदि का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। यदि वही कथा नाटक का रूप लेने तो दृश्य और श्रव्य दोनों के सम्मिश्रण से और भी अधिक आनन्द प्राप्त होता है। क्योंकि उसमें अपने सामने जो दृश्य उपस्थित होते हैं, उनकी भाव-भंगिमा का गहरा प्रभाव पड़ता है और कई बार तो वह भावी जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करता है।

कथा 'स्व' की भी होती है और 'पर' की भी। अपने जीवन के प्रसङ्ग भी कथा का रूप धारण कर लेते हैं। हमारा सारा जीवन ही 'बात' या 'कथा' है, उसी के आधार से भावी कथानक बनते हैं। अपना कथा को आत्म-कथा या संस्मरण कहा जाता है। इसी तरह दूसरे प्राणियों की कुछ बातें भी कथा का रूप धारण कर लेती हैं। इसीलिये लोक कथाओं में प्रायः ऐसा कहते व सुनते हैं कि चकवा चकवी से उसके बच्चे कोई कहानी कहने का अनुरोध करते हैं तो वे उनसे पूछते हैं कि कौसी कहानी सुनाऊँ? 'घर-बीती' या 'पर-बीती'। तब बच्चे उत्तर देते हैं कि घर बीती तो रोज ही सुनते हैं आज तो पर बीती कोई रोचक कथा सुनाइये। अर्थात् मानव-मात्र की दूसरे के जीवन प्रसंगों को सुनने-जानने में सहज ही रुचि एवं अधिक आश्चर्य होता है। इसी निमित्त से लाखों कहानियाँ जिनमें कुछ पौराणिक हैं, कुछ काल्पनिक, कुछ ऐतिहासिक और बहुत सी लोक कथायें होती हैं, अब तक कही व लिखी जाती रही हैं।

जैन तीर्थंकरों और आचार्यों ने जिस तरह लोक-भाषा को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया, जिससे जन-जन उनकी कही हुई बात को सहज ही समझ सकें, उसी तरह अपनी बात को प्रभावशाली या असरकारी, हृदय-स्पर्शी और मार्मिक बनाने के लिये उन्होंने लोक

प्रचलित व प्रसिद्ध दृष्टांतों और कथाओं का भरपूर उपयोग किया, इससे लोक रुचि सहज आकर्षित और जागृत हुयी और इसका बहुत अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ। भगवान महावीर से लेकर अब तक हजारों छोटी-बड़ी कथायें विविध भाषाओं और रूपों में लिखी गईं जिनके प्रकाशन एवं प्रचार से सहज ही लोक कल्याण हो सकता है। हमारा ध्यान उनकी ओर इतना नहीं गया, जितना जाना चाहिये था। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती तथा मराठी, तमिल और कनाड़ में लिखे हुए चरित्र-काव्य एवं कथा-ग्रन्थ और कथा-संग्रह काफी प्रकाशित भी हुये हैं। और अप्रकाशित तो उनकी अपेक्षा सौ गुने होंगे। पर वे ग्रन्थ भाषा और शैली की भिन्नता के कारण वर्तमान जनता को इतना अधिक आकर्षित नहीं कर सकते। इसलिये नवीन भाषा, शैली में कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक आदि रूप में ग्रन्थ लिखे जाने बहुत ही आवश्यक हैं गुजराती में 'जय भिक्खू' मोहनलाल धामी आदि कई समर्थ लेखकों द्वारा ऐसा प्रयत्न हुआ है और उनकी रचनाओं का जैन समाज में ही नहीं, जैनेतर समाज में भी बहुत आदर हुआ है और लोक प्रियता प्राप्त हुयी है। पर हिन्दी में अभी तक ऐसा प्रयत्न नहींवत् हुआ है। इसलिये ऐसे गुजराती साहित्य के अनुबाद और स्वतन्त्र लेखन की बहुत ही आवश्यकता प्रतीत होती है।

महापुरुषों की जीवनियाँ तो जीवन निर्माण में बहुत ही उपयोगी होती हैं। उनके आदर्श जीवन को पढ़-सुनकर बड़ी सात्त्विक प्रेरणा मिलती है। महापुरुष बनने की क्या हस्तगत होती है अतः बालकों को अधिकाधिक बतलाई जाय, जिससे उनका जीवन आदर्श एवं महान बन जावे।

अब से ५० वर्ष पहले शतावधानी पं० धीरजलाल शाह का ध्यान बालकोपयोगी जैन कथाओं को उन्हीं के अनुरूप भाषा व शैली में लिखने और प्रकाशित करने की ओर गया। इसी के

फलस्वरूप 'बालग्रन्थावली' के नाम से २०-२० कथाओं के छः गुच्छव अर्थात् १२० बालक्रोपयोगी जैन कथाएँ उन्होंने प्रकाशित कीं। बालग्रन्थावली के प्रथम भाग में उन्होंने लिखा है कि शुष्क-तत्व-ज्ञान साधारण-मनुष्यों की बुद्धि में नहीं आता, उनकी समझ में यह तभी आता है, जब कथाओं के द्वारा उन्हें समझाया जाय। यह तो निश्चित ही है कि सूक्ष्म-रीति से इन कथाओं का संस्कार सुनने वाले के मन पर पड़ता रहता है। यही कारण है कि जैन साहित्य का एक बड़ा भाग इस प्रकार की कथाओं से परिपूर्ण है। ये सब कथाएँ शान्त रस-वैराग्य भावना की पुष्टि में ही रची गई हैं। इनमें शृंगार, वीर, करुणा तथा अद्भुत आदि सभी रसों का स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोगी होने पर भी, उन्हें गौण स्थान दिया गया है। इन कथाओं का उद्देश्य पाशविक-वृत्तियों को उत्तेजन देना नहीं वरन् मनुष्य जीवन में रहने वाले विषय-कषायों की अग्नि को शान्त करने एवं महान अमृत-आत्मज्ञान रूपी अमृत का रस चखाना रहा है।

आज से कुछ वर्ष पहले जीवन-संग्राम जटिल न होने के कारण व्याख्यान आदि शान्ति पूर्वक सुने जाते थे। पुस्तकें यद्यपि कम होती थीं, किन्तु उन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ा जाता था। अवकाश के समय ये कथायें मित्र मण्डली में भी कही जाती थीं। संस्कारित माताओं के बच्चों को माताओं की वात्सल्य पूर्ण और मीठी वाणी से महान व्यक्तियों के उत्तम चरित्र के श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। पर जीवन की दिशा बदल जाने के कारण आज की संतान को वह सौभाग्य प्रायः नहीं मिल पाता बालकों के सम्पर्क में आने पर विदित हुआ कि उन्हें महान से महान पुरुष के जीवन के विषय में प्रायः कुछ भी जानकारी नहीं होती। इसीलिए बाल साहित्य की कमी के पूर्तिरूप 'बाल ग्रन्थावली' का लेखन प्रकाशन किया गया। हर्ष है कि थोड़े ही समय में २ भागों की करीब १ लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

ऐसी छोटी-२ पर उपयोगी और महत्वपूर्ण कथा-ग्रन्थ प्रत्येक बालक को पढ़ने को मिले तो उनके जीवन को सुसंस्कारित करने में बहुत बड़ी सफलता मिलेगी। वैसे युवक, वृद्ध और नारी समाज द्वारा भी उनका पढ़ा जाना बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा। लोगों के पास समय की कमी है। अतः संक्षिप्त में ही लिखे होने से ये जैन कहानियाँ अवश्य ही बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी।

श्री धीरजलाल टोकरसीशाह ने बाल ग्रन्थावली का प्रथम भाग गुजराती में सं० १९८६ में स्वयं प्रकाशित किया था। थोड़े ही वर्षों में ६ भागों में १२० कहानियाँ छप गईं और काफी लोक प्रिय हुईं साथ ही उन्होंने 'विद्यार्थी वाचनमाला' के भी ऐसे कई भाग प्रकाशित किए, जो सर्व जनोपयोगी सिद्ध हुए। 'बाल ग्रन्थावली' के प्रथम भाग की २० कहानियों का हिन्दी अनुवाद भी भजामिशंकर दीक्षित सेकरबा के ज्योति कार्यालय अहमदाबाद से संवत् १९८८ में प्रकाशित किया गया। इसके बाद बाल ग्रन्थावली के दूसरे भाग का हिन्दी अनुवाद पं० गोपीनाथ गुप्त से करवा के ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मसी, अहमदाबाद से सं० १९९४ को प्रकाशित करवाया गया। इसके निवेदन में लिखा गया है कि "इसमें महापुरुषों की जीवनी सरल और सुबोध भाषा में होने से गुजरात में तो यह घर-घर में सुरुचि से बाँची जाती है। इन पुस्तकों के अध्ययन से मनुष्यों को आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। इनसे बच्चों के हृदय में धर्म प्रेम जागृत होने से वे सुसंस्कारी और सदाचारी बन सकेंगे। इसलिए हमने इसे सर्वव्यापी बनाने के लिये राष्ट्रभाषा में अनुवाद कराके प्रकाशित किया है।"

बहुत उपयोगी होने पर भी 'बाल ग्रन्थावली' के दोनों भागों के उपर्युक्त हिन्दी संस्करण काफी वर्षों से नहीं मिलने और भागों के भागों का तो हिन्दी अनुवाद हुआ ही नहीं। विगत १० वर्षों में भी जैन बाल साहित्य के निर्माण और प्रकाशन का विशेष कार्य

न होते देख मैंने बाल ग्रन्थावली के पुनः प्रकाशन का विचार किया ताकि कुछ तो कमी मिटे और आवश्यकता की पूर्ति हो। शासन प्रभाविका पूज्याम विचक्षण श्रीजी ने भी बालवोपयोगी इस प्रकाशन को आवश्यक समझ कर समर्थन व सहयोग दिया अतः मेरे सुपुत्र धर्मचन्द से हिन्दी बाल-ग्रन्थावली की कापी टाइप करवायी। कथाओं के क्रम में कुछ परिवर्तन आवश्यक समझ प्रथम भाग में दूसरे भाग की—१ गौतम स्वामी, २ भरत, बाहुबलि, ३ वीर भामाशाह, ४ स्थूलिभद्र और ५ महाराजा सम्प्रति इन पाँच कथाओं को सम्मिलित किया गया। और पाँच प्रसिद्ध तीर्थंकरों में से शान्तिनाथ की जीवनी बाल-ग्रन्थावली में नहीं होने से उसके संक्षेप में मैंने लिखकर पूर्ति की। प्रेस की असुविधा के कारण पाँच तीर्थंकरों और भरत बाहुबलि की जीवनी को जैन कथा संग्रह प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित करना पड़ा। बाकी १५ कथायें इस दूसरे भाग में प्रकाशित हो रही हैं। अर्थात् बाल-ग्रन्थावली के दोनों भागों से लेकर नये क्रमानुसार सम्पादित एवं संशोधित करके जीव-नियां इन दोनों भागों में दी गई हैं। इन दोनों ग्रंथ के प्रकाशन में जैन महिला मंडल जयपुर और कमलाकुमारी डोशी दिल्ली का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। इसके लिये पूज्या विचक्षण श्रीजी एवं आर्थिक सहयोग देने वालों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए इनके अधिकाधिक प्रचार की शुभ कामना करता हूँ।

अगरचन्द नाहटा, बीकानेर



श्री गराधर गौतम स्वामी

(१)

मगध देश में एक निर्मल नीर-वाहिनी नदी के किनारे सुन्दर वृक्ष-समूह फलों से लद रहा है। उन पर पक्षियों का मेला लगता है। बीच में एक छोटी सी फुलवारी है। फुलवारी क्या है, फूलों की खान है, सुगंधी का भण्डार है। उनकी शोभा अपार है। भ्रमरों की गुञ्जार और चिड़ियों का चहचहाट मन को मुग्ध कर रही है। फुलवारी में छोटी-छोटी भूँपड़ियाँ हैं। वे सादी होने पर भी सुव्यवस्थित हैं। हवनकुण्ड है। प्रातः सायं गगनव्यापी हवन-धूम्र से दशों-दिशायें सुगन्धमय हो जाती हैं। पास ही एक गौशाला है, जिसमें भोली गायें और सुन्दर बछड़े आनन्द से रहते हैं। यहां इन्द्रभूति गौतम नामक एक विद्वान ब्राह्मण का गुरुकुल है।

प्राचीन काल में वर्तमान समय के जैसे स्कूल न थे। उस समय गुरुकुल होते थे। माँ बाप अपने बच्चों को इन गुरुकुलों में पढ़ने के लिए भेजते थे। वे गुरु के पास रहते, वहीं खाते पीते और विद्या-भ्यास करते थे। गुरु प्रेम पूर्वक पढ़ाते थे। उनके नजदीक गरीब और अमीर के बालकों में भेद न था। सब विद्यार्थी परस्पर प्रेम से रहते और गुरु के समीप विनय पूर्वक वरतते थे। विद्याभ्यास समाप्त होने पर बड़े होकर वे गुरु की आज्ञा से अपने घर जाते थे।

इन्द्रभूति गौतम के गुरुकुल में पांचसौ विद्यार्थी थे। ये मगध-देश के गोबर नामक ग्राम के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम बसुभूति और माता का पृथ्वी था। ये समस्त वेद शास्त्रों के ज्ञाता

थे । इनके दो भाई थे, एक का नाम अग्निभूति और दूसरे का वायुभूति था । ये दोनों भी बड़े विद्वान थे और अपने-अपने गुरुकुल चलाते थे ।

(२)

इस देश में अपापा नामक एक नगरी थी । वहाँ सोमिल नामक धनवान ब्राह्मण रहता था । उसने एकबार एक बृहद् यज्ञ करने के लिए एक इन्द्रभूति गौतम तथा उनके दोनों भाइयों को निमन्त्रण भेजा । इनके अतिरिक्त अन्य ८ विद्वान ब्राह्मणों को भी बुलाया । इन ११ ब्राह्मणों में इन्द्रभूति गौतम सबसे अधिक विद्वान था, अतएव वह यज्ञ का सर्वोपरि आचार्य नियुक्त हुआ । नगर के बाहर एक बाग में मंडप बनाया गया और उसकी आज्ञानुसार सब कार्य होने लगा । होम प्रारम्भ हुआ, धी की आहुतियाँ दी जाने लगीं, वेद ध्वनि गूँजने लगी ।

इसी समय वहाँ महावीर स्वामी पधारे । वे महाज्ञानी और महान तपस्वी थे । अभी थोड़े समय पूर्व ही उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था । उनका प्रभाव अद्भुत था । लोग उनका नाम सुनकर मस्तक झुका देते थे ।

अपापा पुरी में इन महात्मा के आने का समाचार पहुँचना था कि जन समूह दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा । कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, कोई पालकी में सवार होकर आया । कोई ऊँट पर आया तो कोई पैदल । यह धूमधाम देखकर गौतम ने सोचा—आज का दिन और यह यज्ञ धन्य है, जो इतने मनुष्य यज्ञ में भाग लेने के लिए आ रहे हैं, परन्तु थोड़ी ही देर बाद गौतम के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि जन-समूह यज्ञ में न आकर बाग की दूसरी ओर जा रहा है । उसने शिष्यों को यह जानने के लिए भेजा कि ये लोग उधर कहाँ जा रहे हैं । शिष्यों ने वहाँ जाकर देखा तो लोग परस्पर चर्चा कर रहे थे—“धन्य है आज का दिन, धन्य है यह घड़ी,

जो श्री सर्वज्ञ के दर्शन होंगे । आज जीवन सफल होगा” । शिष्यों ने आकर सब समाचार गौतम को बतलाये ।

गौतम तो सुनते ही चकित रह गया, तुरन्त उसके मुँह से निकल पड़ा-सर्वज्ञ कौन है ? सर्वज्ञ तो कोई हो ही नहीं सकता, निश्चय ही यह कोई जादूगर है, और भोलेभाले लोगों को ठगता है, मुझे एक ब्राह्मण के नाते अपना कर्तव्य पालन करने के उद्देश्य से इसका कपट जाल तोड़ना और लोगों को उसमें फँसने से बचाना चाहिए । उसने अग्निभूति को बुलाया और कहा—भाई अग्निभूति !

अग्निभूति—क्या आज्ञा है महाराज !

गौतम—मैं इस जादूगर की जाँच करने जाता हूँ, तुम यज्ञ का समस्त कार्य सम्पादन करना ।

अग्निभूति—भाई साहब, यह सब कार्य करने के लिए तो हम लोग ही तैयार हैं, फिर आपको कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है । हमें आज्ञा दीजिये, हम उसका भंडाफोड़ करेंगे ।

गौतम—नहीं, मैं स्वयं ही जाकर जाँच करूँगा, यह तुम्हारा काम नहीं है । यह कह कर वह अपने शिष्यों के साथ चल दिया । सबने कहा—आपकी जय हो, काम पूरा करके शीघ्र वापस आइये ।

(३)

एक बड़ी सभा भरी है । मध्य में महावीर स्वामी विराजमान हैं । उनकी कांति अद्भुत है । उनका प्रभाव अलौकिक है । वे अमृतमय वाणी से उपदेश दे रहे हैं । सब एकाम्र तन-मन से उपदेश सुन रहे हैं ।

इसी समय गौतम आये । आगे आगे वे और उनके पीछे शिष्य वर्ग चल रहा है । गौतम ने दूर से ही प्रभु महावीर को देखा

और देखते ही क्रोध व मान शान्त हो गया। उनका तेज ही सहन न कर सके। थोड़ी देर तक एकटक देखने के पश्चात् वह आगे बढ़े। प्रभु महावीर ने मधुर स्वर में कहा-गौतम आओ। गौतम सोचने लगे, इन्हें मेरे नाम को खबर कैसे हुई। पर इसमें आश्चर्य की क्या बात है; मेरे जैसे बड़े आचार्य का नाम कौन नहीं जानता ?

अब गौतम सोचने लगा कि ये सर्वज्ञ होंगे तो मेरी शंका का समाधान अवश्य ही करेंगे। गौतम अद्वितीय विद्वान् था, परन्तु उसके मन एक शंका बनी हुई थी और वह यह कि जीव की सत्ता है या नहीं। प्रभु महावीर ने उनकी शंका का समाधान किया। इससे उनके हृदय पर प्रभु महावीर का अद्भुत प्रभाव पड़ा। उनका गर्व जाता रहा। वे बोले-प्रभु ! मैं आपकी शरण में हूँ। मैं मूर्ख आपकी परीक्षा लेने आया था, परन्तु मेरी ही परीक्षा हो गई। भगवन् कृपा करके सत्य धर्म समझाइए।

प्रभु महावीर ने उन्हें सत्यधर्म का ज्ञान कराया और वे अपने शिष्यों सहित प्रभु के त्यागी शिष्य बन गये। इन्हीं इन्द्रभूति गौतम का नाम आगे जाकर श्रीगणधर गौतम स्वामी पड़ा। इनके बहुत से शिष्य थे। इसीसे वे गणधर कहलाये। थोड़ी देर बाद अन्य आचार्य भी आये और उन्होंने भी गौतम के समान विजित होकर शिष्यों सहित दीक्षा लेली।

(४)

गौतम अद्वितीय विद्वान् थे, परन्तु उन्हें अभी तक आत्मा आदि का पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ था। उन्हें किसी-किसी विषय में शंकायें उत्पन्न होती थीं, तब वे नम्रता पूर्वक महावीर स्वामी के समाने निवेदन करते और प्रभु उनका यथोचित समाधान कर देते थे। अपनी समझ की कमी के कारण यदि एकबार में कोई बात पूरी समझ में नहीं आती थी,

तो वे पुनः पूछते थे । इस तरह शंकाओं का समाधान होने और पूर्व संचित ज्ञान पर मनन करने से उनका ज्ञान बहुत अधिक बढ़ गया ।

वे अत्यधिक तप करते थे । तप के प्रभाव से उन्हें बहुत सी लब्धियां (शक्तियाँ) प्राप्त हुईं । यथा-सूर्य किरणों के सहारे पर्वत पर चढ़ जाना और एक ही पात्र में हजारों मनुष्यों को भोजन करा देना इत्यादि पर उन्हें न तो इन शक्तियों पर अभिमान था और न ही वे उनका दुरुपयोग करते थे ।

श्री गौतमस्वामी की उपदेश प्रणाली बहुत ही अच्छी थी । चाहे जैसे मनुष्य को वे थोड़ी देर में ही समझा देते । जब प्रभु महावीर स्वामी को किसी को उपदेश देने के लिए भेजने की आवश्यकता पड़ती तो वे उन्हीं को भेजते थे । और गौतम स्वामी उन्हें अवश्य बोध करा देते थे ।

एकबार प्रभु महावीर और गौतम स्वामी विहार कर रहे थे । ठीक दोपहर के समय वे एक खेत के पास से निकले । एक किसान हल जोत रहा था । प्रभु ने गौतम से कहा—गौतम इस किसान को बोध दो । गौतम तुरन्त उस किसान के पास गया । प्रभु आगे चल दिये ।

गौतमस्वामी ने किसान के पास जाकर उपदेश दिया । किसान को आत्म कल्याण की उमंग आई । उसे वीर भगवान के साधु का वेश दिया गया । अब वे दोनों प्रभु महावीर की ओर चले । रास्ते में किसान ने पूछा—“हम कहां जा रहे हैं ?” गौतम स्वामी ने कहा—“मैं अपने गुरु के पास जा रहा हूँ ।”

किसान को बड़ा आश्चर्य हुआ । कहने लगा—भगवन् ! क्या आपके भी गुरु हैं । गौतम स्वामी ने कहा—“हाँ । देवों के लिए भी बंदनीय और समस्त जगत के पूज्य मेरे गुरु हैं ।”

किसान सोचने लगा, इनके गुरु तो न जाने कैसे होंगे । यही सोचते-सोचते वह गौतम स्वामी के साथ चलता रहा । प्रभु महावीर एक विशाल सभा में बैठे थे । सब पर उनका अद्भुत प्रभाव पड़ता था । उस किसान ने उन्हें दूर से ही देखा । न जाने क्यों, उसके मुख पर खेद प्रगट होने लगा और उसने उधर से पीठ फेरली ।

गौतमस्वामी उसे सभा में ले गये और कहा-महानुभाव, इन्हें वंदन करो, ये जगत के उद्धारक हैं । किसान ने कहा-यदि यही तुम्हारे गुरु हैं, यही जगत के उद्धारक हैं, तो मैं तो इनके पास एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता । इतना कह कर वह वहाँ से एकदम भाग निकला । समस्त सभा आश्चर्य चकित हो गई । गौतमस्वामी को भी ऐसे आदमी को शिष्य बनाने के कारण कुछ शरम सीं आगई । पूछने लगे, प्रभो ! इसे केवल आपके प्रति ही इतना द्वेष क्यों है ? अन्य किसी से तो वैर नहीं है । प्रभु ने उत्तर दिया-गौतम ! पूर्वभ्रम में एकबार जब मैं त्रिपृष्ठ नामक बलवान राजा था । तब यह किसान का जीव सिंह था और इसने शहर में हाहाकार मचा रखा था । तब मैंने इसको पकड़ कर मार डाला था । उस समय तुम मेरे सारथी थे । जब अन्त समय में यह दुःख से पीड़ित होकर गर्जना कर रहा था और तड़फड़ा रहा था, तब तुमने मधुर वचनों से इसे शान्ति प्रदान की थी, यही कारण है कि मैं इस भ्रम में तीर्थंकर हूँ, तथापि इसे मेरे प्रति द्वेष है और तुम्हारे प्रति प्रेम । यह बात सुनकर सबने बैर-विरोध छोड़कर प्रेममय जीवन विताने का बोध प्राप्त किया ।

(५)

एकबार गौतम स्वामी ने अनेकों तापसों आदि को उपदेश दिया, उन्हें थोड़े ही समय में श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, यह देखकर गौतम

सोचने लगे—जिन्हें-जिन्हें मैंने उपदेश किया है जब उन्हें थोड़े ही समय में श्रेष्ठ आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया, तो क्या मुझे श्रेष्ठ केवलज्ञान प्राप्त नहीं होगा ? वे यह विचार कर ही रहे थे कि इतने ही में भ० महावीर से उन्होंने सुना-जो मनुष्य अष्टापद पर्वत पर चढ़कर वहाँ के मंदिरों के दर्शन करता है उसे अवश्य श्रेष्ठज्ञान (केवल ज्ञान) प्राप्त होता है ।”

गौतम स्वामी ने अष्टापद पर्वत पर जाने का विचार किया और प्रभु महावीर के सम्मुख जाकर वन्दना करके बोले—प्रभो ! मेरी अष्टापदजी पर आने की इच्छा है, आज्ञा दीजिए। प्रभु महावीर जानते थे कि गौतम के वहाँ जाने पर उसे केवलज्ञान प्राप्त होगा और वह अन्यो को भी बोध देगा, अतएव उन्होंने कहा—गौतम, जिससे तुम्हें सुख मिले, वही काम करो ।

गौतम स्वामी वहाँ से चल दिए, थोड़े समय पश्चात् अष्टापद पहुँचे वे और अपनी विद्या के बल से ऊपर चढ़ने लगे ।

इसी समय कितने ही तापस अष्टापद पर चढ़ने का यत्न कर रहे थे, परन्तु उनमें श्री गौतम के समान शक्ति नहीं थी, अतएव वे थोड़ा चढ़कर ही थक गये थे । वे तेजपुँज गौतम स्वामी को देखकर आश्चर्य करने लगे । ओहो ! यह हृष्टपुष्ट शरीर होते हुए भी किस प्रकार अष्टापद पर चढ़ रहा है । गौतम अष्टापद के शिखर पर पहुँचे, वहाँ २४ तीर्थंकरों के मन्दिर थे, अहो, कितने सुन्दर और कितने पवित्र । उनमें प्रत्येक तीर्थंकर के शरीर के बराबर ही भव्य मूर्तियों के दर्शन करके मधुर स्वर में स्तुति की:—

जग के चिन्तामणि एक जिनराज जी,
जगगुरु जगनाथ हो जिनेश जी ।
जग के चिन्तामणि एक जिनराज जी ।

जग के वे रक्षक जग के वे बन्धु,
जग का देते वे साथ हो जिनेश जी ।
जग के चिन्तामणि एक जिनराज जी ।
जानें जग की सब ही वे बातें,
ज्ञानी हैं वे भरपूर हो जिनेश जी ।
जग के चिन्तामणि एक जिनराज जी ।
अष्टापद में जिनके बने भव्य मंदिर,
किये करम चक्रचूर हो जिनेश जी ।
जगत के चिन्तामणि एक जिनराज जी ।
फैली कीर्ति सब जग में जिनकी,
दो दश, आठ अरु चार हो जिनेश जी ।
जग के चिन्तामणि एक जिनराज जी ।
कदापि भंग न जिनका शासन होगा,
बंदु तिन्हें बारम्बार हो जिनेश जी,
जग के चिन्तामणि हो जिनराज जी ।

फिर अशोक वृक्ष के नीचे रात बिताकर दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरों के दर्शन करके वे नीचे उतरे ।

रास्ते में तपसी उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि महात्मा कब वापस आवें और कब हम उनके शिष्य बनें । गौतम स्वामी के आते ही सबने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया, और हाथ जोड़ कर शिष्य बनाने की प्रार्थना की ।

श्री गौतम स्वामी ने उन सब (१५००) को शिष्य बनाया । भोजन के समय वे खीर का एक पात्र (भिक्षा पात्र) भरकर लाये ।

सब शिष्य परस्पर कहने लगे—इस पात्र में से १५०० का पारणा किस प्रकार होगा ? गौतम स्वामी ने कहा—सब एक पंक्ति

में बैठ जाओ, और सब बैठ गये। तब उन्होंने एक ही पात्र में से सबको भोजन करा दिया। इससे उनमें शिष्यों की श्रद्धा बेहद बढ़ गई।

अब गौतम स्वामी ने कहा, चलो सब गुरुदेव के पास चलो। शिष्यों ने पूछा—“स्वामी क्या आपके भी गुरु हैं? मार्ग में शुभ विचार करते हुए सब तापस पवित्र (४ कर्म रहित) हुए और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

श्री गौतम १५०० शिष्यों सहित प्रभु महावीर की सभा में उपस्थित हुए और उन्हें वंदन किया, तदनन्तर शिष्यों से कहा—ये मेरे गुरु हैं इन्हें नमस्कार करो। यह सुनकर प्रभु महावीर ने कहा—“गौतम....., इन्हें श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होचुका है, इनकी आशातना मत करो, (केवलज्ञानी किसी को नमस्कार न करे)। गौतम को यह सुनकर पुनः विचार आया—जब इन सबको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है तो क्या मुझे प्राप्त न होगा?

प्रभु महावीर ने गौतम के मन की शंका समझ ली और पूछा—गौतम! सर्वज्ञ का वचन मानना योग्य है या नहीं? गौतम ने कहा—प्रभु मानने योग्य है। प्रभु महावीर ने कहा—तब मेरे वचन में शंका क्यों करते हो? तुम्हें केवलज्ञान अवश्य प्राप्त होगा। फिर उपदेश दिया—“हे गौतम सुनो, एकबार भी प्रमाद मत करना, तुमने जो जीवन शुरू किया है उसमें आगे बढ़ो, कठिनाइयों से न डरो, परन्तु परिणाम न निकले तो निराश न हो, क्या-क्या करना चाहिए, यह समझ लो, क्षमा, नम्रता और सरलता का विकास करो सब प्रकार के पापों से दूर रहो। शान्ति के मार्ग में चले चलो और आगे बढ़ो एक क्षण भी बरबाद मत करो।” मेरे प्रति तुम्हारा राग है उसे भी छोड़ो।

इसी प्रकार होते-होते प्रभु महावीर का निर्वाणकाल निकट आया, उन्होंने गौतम को बुलाकर कहा:— गौतम! देव शर्मा नामक ब्राह्मण है, उसे जाकर बोध कराओ, गौतम चले गए।

उधर प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए, गौतम वापस आने लगे तो सुना प्रभु निर्वाण को प्राप्त हो चुके हैं। यह समाचार सुनते ही इन्हें आघात पहुँचा, मन में सोचने लगे, प्रभो ! जब शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होने वाले थे, तो मुझे क्यों दूर भेजा ? सदा आपके साथ रहने वाले को आपके अन्तिम दर्शन न हुए, मेरे साथ यह बाजी क्यों खेली ? ओह,....मेरा ही हृदय कठोर है, प्रभु का निर्वाण सुनकर भी वह फट क्यों नहीं जाता, फिर विचार आया—मेरी ही भूल है, निर्मोही प्रभु में मेरा मोह था, वह मोह दूर करने के लिये ही मुझे दूर भेजा होगा, बस हो चुका, अब इस मोह का अन्त वरुँ मुनि के लिये तो सब समान हैं, किसी के प्रति मोह या द्वेष होना ही नहीं चाहिये, इसी प्रकार विचार करते करते उन्हें केवल ज्ञान हुआ।

अब गौतम स्वामी सर्वज्ञ हो गये। महावीर प्रभु के ११ मुख्य शिष्यों में वे सबसे बड़े थे, अतएव वे सबके नायक बने। चौदह हजार साधु उनके हाथ के नीचे रहकर पवित्र जीवन बिताते थे।

१२ वर्ष तक वे देश के पृथक-पृथक भागों में घूमे और प्रभु महावीर के उपदेशों का खूब प्रचार किया। अन्त में एक मास का उपवास करके राजगृह में निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

गौतम स्वामी के समान कोई अन्य गुरु नहीं हुआ, इसीसे कहावत है कि गौतम समान गुरु नहीं। तथा—

अमृतवास अंगूष्ठ में, अगणित लब्धि आगार।

गुरु गौतम सुमरन करो, मन वांछित दातार ॥

लाखों भक्तों के हृदय में विराजमान गुरु गौतम को अनेक बार वंदना है।

चन्दनबाला

चम्पा नगरी के राजा और उनकी रानी दोनों ही बड़े सज्जन थे। राजा का नाम था दधिवाहन और रानी का धारिणी। ये दोनों विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के पूण सहायक और अपनी प्रजा के पालन करने वाले थे। इनके राज्य में सब जगह आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था। न तो लोगों को चोरों से भय था और न अधिकारियों से कष्ट। गंगाजी बारहों महीने बहती रहती थीं, जिसके कारण अन्न फल-फूल की उपज बहुत अधिक होती थी। इनकी प्रजा अकाल का तो नाम भी न जानती थी।

इनके यहां देवी के समान सुन्दर एक कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्या का शरीर अत्यन्त कोमल और वाणी अमृत के समान मीठी थी। वह ऐसी सुन्दर तथा तेजस्विनी थी, कि देखने वाले की दृष्टि उस पर नहीं ठहरती। इस कन्या का नाम 'वसुमती' रखा गया।

वसुमती सोने के खिलौनों से खेलती हुई बड़ी होने लगी। माता पिता को वह अत्यन्त प्रिय और सखियों की तो मानों प्राण ही थी।

माता-पिता ने जब देखा कि वसुमती अब काफी समझदार हो चुकी है तब उन्होंने उसके लिए शिक्षक नियुक्त कर दिये। उन शिक्षकों से वसुमती ने लिखना, पढ़ना, गणित और गायन आदि की शिक्षा पाई। फल फूल पैदा करने के काम में वह खूब चतुर हो गई और वीणा बजाने की कला में तो उसकी बराबरी का उस समय और कोई था ही नहीं।

फिर उसे शिक्षा देने के लिए धर्म-पण्डितों की नियुक्ति की

गई। उनसे वसुमती ने धर्म सम्बन्धी गहरा ज्ञान प्राप्त किया। एक तो वह पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों से युक्त थी ही, तिस पर सद्गुणी माता-पिता के यहाँ उसका जन्म हुआ, साथ ही विद्या पढ़ने की रुचि और पढ़ाने वालों की चतुरता। इन सब कारणों से वसुमती के गुणों का खूब विकास हुआ।

वह प्रतिदिन सबेरे जल्दी उठकर श्री जिनेश्वरदेव का स्मरण करती। फिर माता के साथ बैठकर प्रतिक्रमण करती। ज्योंही प्रतिक्रमण पूरा होता त्यों ही जिन-मन्दिर के घड़ी-घंटों की आवाज सुनाई देती। अतः माँ-बेटी दोनों ही सुन्दर वस्त्र पहन कर मन्दिर को जातीं और वहाँ अत्यन्त श्रद्धा और भाव पूर्वक वन्दन करतीं। फिर मन्दिर की अद्भुत शान्ति देखकर वसुमती अपनी माता से कहती "माताजी! कैसा सुन्दर स्थान है! अपने राजमहल में तो बड़ी गड़बड़ और दौड़-धूप लगी रहती है, उसके बदले में यहाँ कैसी परम शान्ति है? मेरा तो यही जी चाहता है कि यहीं बंठी रहूँ और शान्ति के समुद्र समान इस प्रतिमा के दर्शन एक-टक दृष्टि से सदा किया ही करूँ।"

वसुमती की यह बात सुनकर धारिणी कहती, कि "बेटी वसुमती! तुझे धन्य है, जो तेरे हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न हुई। सत्य है, ये राजमहल के सुख वैभव क्षणिक-प्रलोभन मात्र हैं। उनमें मला वह शान्ति कैसे मिल सकती है, जो श्री जिनेश्वर देव के मुख पर दिखाई दे रही है? अहा, इनके स्मरण करने मात्र से दुख-सागर में डूबे हुए को भी शान्ति मिलती है। बेटी! इनका पवित्र-नाम कभी भी न भूलना।"

इस तरह माँ बेटी की परस्पर बात-चौत होती और फिर घर आकर अच्छे-अच्छे ग्रन्थों को पढ़तीं। दोनों इसी तरह आनन्द में दिन बिताती रहती थीं।

एक बार राजा-रानी जल्दी उठकर इष्टदेव का स्मरण कर रहे थे। इसी समय कुछ सिपाही दौड़ते हुए आये और प्रणाम करके हाँफते-हाँफते कहने लगे—“महाराज ! महाराज ! कौशाम्बी के राजा शतानिक की सेना बढ़ आई है। हमने नगर के सब दरवाजे बन्द कर दिए हैं। अब फरमाइये कि आपकी क्या आज्ञा है।”

राजा ने कहा—“लड़ाई के नगाड़े बजावाओ और लड़ने की तैयारी करो।”

जोर-जोर से लड़ाई के नगाड़े बजाये गए। युद्ध के नगाड़ों की गड़गड़ाहट सुनकर सब लोगों को थोड़ी ही देर में यह मालूम हो गया कि नगर के चारों तरफ शत्रु का घेरा पड़ गया है। अतः सब लोग लड़ने को तैयार हो गये।

वे तैयार किस तरह हुए ?

शरीर पर जिरह-बख्तर पहने और कमर में चमकती हुई तलवारें बाँधी। कंधों पर ढालें लटकाईं और बाणों के तरकस बांधे। एक हाथ में धनुष लिये और दूसरे में तेज भाले।

इस तरह तैयार होकर सब योद्धा नगर के कोट पर बढ़ गये और वहाँ से तीर मारने लगे। सनसनाहट करते हुए बाणों की वर्षा सी होने लगी।

बाण लगते ही मनुष्य मर जाते। किन्तु शत्रु सेना बहुत बड़ी थी, उसमें से यदि दो-चार मर भी गए तो क्या हो सकता था ? वह तो टिड्डी-दल की भाँति बढ़ती चली ही आ रही थी।

थोड़ी ही देर में सेना कोट के समीप आ गई। कोट के नीचे खाई थी, जिसमें पानी भरा था। किन्तु शत्रु सेना के पास तो लकड़ी के पुल और बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ थीं, जो उन्होंने कोट के किनारे-किनारे बढी कर दीं।

वाणों की झड़ी लग रही थी, जिससे खूब आदमी मरते थे। किन्तु लड़ने में वीर योद्धा लोग उन सीढ़ियों पर चढ़ते ही जाते थे, जरा भी न हिचकिचाते थे।

कोट के कँगूरों पर पहुँचते ही भालों की मार शुरू हुई। मनुष्य टप-टप नीचे गिरने लगे। किन्तु फिर भी और मनुष्य चढ़ते ही जाते थे, डरते नहीं थे।

थोड़ी ही देर में शत्रु-सेना कोट पर चढ़ आई। वहाँ तलवारों से युद्ध होने लगा। इस लड़ाई में कौशाम्बी के लश्कर की विजय हुई।

कुछ सिपाहियों ने जाकर नगर के दरवाजे खोल दिये, जिससे सारी सेना नगर के भीतर घुस आई।

राजा दधिवाहन अपने प्राण बचाकर भागे, उनका लश्कर भी जी लेकर भाग चला। वे जानते कि शतानिक के हाथ पड़ जाने पर हम लोगों को मरकर ही छुट्टी मिलेगी।

शतानिक राजा ने अपनी सेना में घोषणा करवादी कि—
“नगर को लूटो और जो कुछ ले सको, वह ले लो।”

पागल की तरह उद्विग्न-सिपाहियों ने लूट-पाट शुरू कर दी। सारे नगर में हाहाकार मच गया और चारों तरफ दौड़-धूप तथा चिल्लाहट होने लगी।

रानी धारिणी भी राजपुत्री वसुमती को ले, राजमहल से निकल कर भाग चलीं।

सारे नगर में शतानिक-राजा ने अपनी दोहाई फिरवादी।

किन्तु धारिणी और वसुमती का क्या हुआ ?

वे दोनों नगर से बाहर निकल गईं। किन्तु इतने ही में शतानिक राजा के एक ऊँट सवार ने उन्हें देख लिया। उसने इन दोनों

अत्यन्त सुन्दरी मां-बेटी को देखकर विचार किया कि चम्पानगरी में लेने के योग्य वस्तुयें तो ये ही हैं। यह सोचकर उसने इन दोनों को पकड़ा और बांधकर अपनी ऊँटनी पर बिठा लिया।

ऊँटनी तेजी से चलने लगी।

ऊँटनी सपाटे से रास्ता काटने लगी। वह न तो नदी-नालों को गिनती, और न काँटे भाटे की ही परवा करती थी। पवन-वेग से दौड़ती हुई, वह एक घोर जंगल में आई। उस वन के वृक्ष और टेढ़े मेढ़े रास्ते आदि सभी भयावने मालूम होते थे। मनुष्य की तो वहाँ सूरत भी नहीं दिखाई देती थी। उस वन में पशु-पक्षी इधर-उधर घूमते और आनन्द करते।

वहाँ पहुँचने पर धारिणी ने उस सवार से पूछा—“तुम हम दोनों को क्या करोगे ?

सवार ने उत्तर दिया—“अरे सुन्दरी ! तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। मैं तुझे अच्छा-अच्छा भोजन दूँगा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाऊँगा और अपनी स्त्री बनाऊँगा।

यह बात सुनते ही, धारिणी के सिर पर तो मानो वज्र ही गिर पड़ा ! वह विचारने लगी कि—“अहो ! कैसा उत्तम मेरा कुल ! कैसा श्रेष्ठ मेरा धर्म ? और आज मुझे यह सुनने का समय आया ! ऐ प्राण ! तुम्हें धिक्कार है ? ऐसे अपवित्र शब्दों को सुनने के बदले तुम इस शरीर को क्यों नहीं छोड़ देते।”

“शील (सदाचार) भङ्ग करके जीवित रहने की अपेक्षा इसी क्षण मर जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है !”

इन विचारों का धारिणी के हृदय पर बड़ा प्रभाव हुआ और वह जीभ खींच के लाश बनकर ऊँटनी पर से नीचे गिर पड़ी।

यह देखते ही वसुमती चिल्ला उठी कि “ओ माता ! ओ प्यारी-माता ! इस भयावने जंगल में मुझे यम के हाथ सौंपकर तू कहां चली गई । राज्य तो नष्ट हो ही चुका था, पर इस कैद की दशा में मुझे केवल एक तेरा ही सहारा था, सो तू भी आज मुझे छोड़कर चल दी !” यों विलाप करते-करते वह बेहोश हो गई ।

उस सवार ने यह देखकर विचारा कि “मुझे इस बहिन से ऐसे शब्द कहना उचित न था । किन्तु खैर, अब इस कुमारी को तो हगिज कुछ न कहना चाहिए । नहीं तो यह भी अपनी मां की तरह प्राण छोड़ देगी ।” यों सोचकर वह वसुमती का बड़ा सत्कार करने लगा ।

जब वसुमती होश में आई, तब उस सवार ने बड़े मीठे शब्दों में उससे कहा कि—“अरे बाला ! धीरज रख । जो कुछ होना था वह हो चुका, अब शोक करने से क्या लाभ है ! तू शान्त हो, तुझे किसी भी तरह का कष्ट न होने पायगा !”

इस तरह, मोठे शब्दों में आश्वासन देता हुआ वह वसुमती को लेकर कौशाम्बी आया ?

कौशाम्बी शहर तो मानों मनुष्यों का समुद्र सा था । उसके रास्ते पर मनुष्यों की अपार-भीड़ रहती थी । देश-विदेश के व्यापारी अपने-अपने काफिले लेकर वहाँ जाते और माल की अदला-बदली करते । वहाँ सभी प्रकार की वस्तुयें बिकती थीं । अनाज और किराना बिकता, पशु-पक्षी बिकते और यहाँ तक कि उस नगर में मनुष्य (दास-दासी) भी बेचे जाते थे ।

उस ऊँट-सरवार ने विचार किया कि “यह कन्या बड़ी सुन्दर है, यदि मैं इसे बेच दूँ तो खूब रुपया मिल जायगा अतः चलो मैं इस बाजार में इसे बेच ही दूँ ।”

वसुमती को वह बाजार में लाया और बेचने को खड़ी कर दी। इसका रूप अपार था, इसलिये जो भी इसे देखता वह चकित रह जाता। इसी तरह लोगों के झुण्ड के झुण्ड उसके आस-पास इकट्ठे होगये और उसकी कीमत पूछने लगे।

वसुमती को इस समय कैसा दुःख हुआ होगा ! राजमहल में रहकर, संकड़ों दाम-दासियों से सेवा करवाने वाली को आज सरे-बाजार में बिकने का मौका आया ! काल की गति कैसी विचित्र है ?

वसुमती नीचा मुँह करके खड़ी होगई और मन ही मन जिनेश्वर से प्रार्थना करने लगी—“हे जगद्बन्धु, हे जगन्नाथ ! जिस बल से आपने मुक्ति प्राप्त की है, उसी बल से अब मेरे शरीर में प्रकट होकर, मेरे शील की रक्षा करो।”

इसी समय वहाँ एक सेठ आये, जिनका नाम था धनावह। वे प्रेम की मूर्ति और दया के भण्डार थे।

वसुमती को देखते ही वे विचारने लगे कि—“अहो ! यह कोई भले घर की कन्या है। किसी दुख की मारी यह बेचारो इस पिशाच के हाथ पड़ गई है। निश्चित ही, यह बेचारी और किसी नीच के हाथ पड़ जायगी तो बड़ा कष्ट सहेगी। अतः मैं ही क्यों न इसे मुँह माँगे दाम देकर खरीद लूँ ! यह मेरे यहाँ रहेगी, तो मौका आने पर अपने माँ-बाप से मिल सकेगी और अपने ठिकाने पर पहुँच जायगी।”

यों सोच, उन्होंने मुँह माँगे दाम देकर वसुमती को खरीद लिया।

धनावह सेठ ने वसुमती से पूछा—“बहिन ! तू किसकी लड़की है ?

वसुमती यह सुनकर बहुत दुःखी हुई। उसके नेत्रों के सामने उसके माता-पिता मानों दिखाई से देने लगे ! कहां तो एक दिन वह चम्पा नगरी की राजकुमारी थी और कहां आज कौशाम्बी की सड़क पर बिकी हुई दासी ! वह कुछ भी उत्तर न दे सकी ।

धनावह सेठ ने जान लिया कि इस कन्या का कुल बड़ा श्रेष्ठ है, अतः यह बतलाना नहीं चाहती। बेचारी को इस प्रश्न से बड़ा दुःख हुआ मालूम होता है। यों सोचकर, उन्होंने फिर कभी इस विषय में कोई प्रश्न न किया।

घर आकर सेठ ने अपनी स्त्री मूला से कहा—“प्रिये ! यह हम लोगों की कन्या है, इसे अच्छी तरह रखना”। मूला उसे अच्छी तरह रखने लगी।

वसुमती यहाँ अपना सा घर जानकर ही रहने लगी और अपने मीठे वचनों से धनावह सेठ तथा अन्य लोगों को आनन्द देने लगी। इसके वचन चन्दन के समान शान्ति देने वाले होते थे, अतः सेठ ने उसका नाम ‘चन्दनबाला’ रख दिया।

चन्दनबाला कुछ दिनों के बाद युवती होगई। एक तो वह यों ही सुन्दरी थी, जिस पर युवा-प्रवस्था ने उसके सौन्दर्य को और भी दूना कर दिया था।

यह देखकर मूला सेठानी विचारने लगीं, कि “सेठजी ने इसे अभी तो लड़की मानकर रखा है, किन्तु इसके रूप पर मोहित होकर, वे अवश्य इससे विवाह कर लेंगे। यदि ऐसा हो गया, तो मानों मेरी जिन्दगी ही मिट्टी में मिल गई।” ऐसे-ऐसे विचारों के कारण मूला सेठानी चिन्ता में पड़ गई।

शीघ्र ऋतु आई। सिर फाड़ने वाली गर्मी पड़ रही है। मिट्टी के गोले के गोले हवा में उड़ रहे हैं। आग के समान गर्म-

हवा चल रही है । बेचारे पशु-पक्षी भी गर्मी से कष्ट पा रहे हैं ।

ऐसे समय में गर्मी से अकुलाकर सेठजी घर आये । घर आकर, उन्होंने इधर-उधर देखा, किन्तु पैर धोने के लिये कोई नौकर वहाँ हाजिर न दिखाई दिया । चन्दनबाला इस समय वहीं खड़ी थी, वह सेठजी की इच्छा समझ गयी । अत्यन्त नम्र होने के कारण, वह स्वयं पानी लाकर पिता के पैर धोने लगी । पैर धोते समय उसकी काली-भँवर चोटी छूट गई और बाल नीचे कीचड़ में जा पड़े । सेठ ने देखा कि चन्दनबाला के बाल कीचड़ में खराब हो रहे हैं, अतः उन्होंने लकड़ी से उठा लिया और प्रेम से बाँध दिया ।

मूला सेठानी खिड़की में खड़ी-खड़ी यह दृश्य देख रही थीं । यह देखकर उनके हृदय की शंका और अधिक पुष्ट होगई । वह विचारने लगी कि—“सेठने इसका जूड़ा बाँधा, यही प्रेम की निशानी है, अतः मुझे समय रहते चेत जाना चाहिये । यदि मैं इस मामले को बढ़ने दूँगी, तो अन्त में यह मुझे ही दुःखदायी होगा ।” ऐसा विचार कर वे नीचे आई और सेठजी को भोजन कराया ।

सेठजी ने भोजन करने के पश्चात् थोड़ी देर आराम किया और फिर बाहर चले गये ।

इस समय में मूला ने अपना काम शुरू किया । एक नाई को बुलाकर, चन्दनबाला के सिर के सारे बाल कटवा डाले । सिर मुड़ाने के बाद उसके पैर में बेडियां डालीं और उसे दूर के एक कमरे में ले गई, वहाँ उसे खूब मारा-पीटा और अन्त में दरवाजा बन्द कर दिया ।

फिर क्या हुआ ?

फिर, सेठानी ने सब नौकरों को बुलाकर धमकाया कि—
“खबरदार ! यदि किसी ने सेठ जी से यह बात कही तो वह कहने
वाला अपनी जान की खैरियत न समझे।” इस तरह नौकरों को
भय दिखलाकर, सेठानी जी अपने पीहर को चली गई।

शाम होने पर सेठ जी घर आए। इधर-उधर देखा किन्तु
कहीं भी चन्दनबाला न दिखायी दी। अतः इन्होंने नौकरों से पूछा—
“चन्दनबाला कहाँ है ?” किन्तु सेठानी के भय के मारे किसी ने
भी उत्तर न दिया। सेठ ने सोचा कि कहीं इधर-उधर खेल
रही होगी।

दूसरे दिन चन्दनबाला को न देख, सेठ ने नौकरों को इकट्ठा
कर उनसे फिर पूछा—“चन्दनबाला कहाँ है ?” उस समय भी
किसी ने उत्तर न दिया।

सेठ ने फिर सोचा कि कहीं इधर-खेल रही होगी। जब तीसरे
दिन भी उन्होंने चन्दनबाला को न देखा, तब बड़े क्रोधित हुए और
नौकरों को धमकाते हुए उनसे पूछा—“अरे, सच बतलाओ कि
चन्दनबाला कहाँ है ? जल्दी बताओ, नहीं तो मैं तुम सबको बड़ा
कड़ा-दण्ड दूँगा”। तब एक वृद्ध स्त्री ने हिम्मत करके सारी बात
सच-सच कह दी।

यह सुनकर सेठ को अपार-दुःख हुआ। वे बोल उठे “मुझे
जल्दी वह जगह बतलाओ, जहाँ मेरी प्यारी बेटी चन्दनबाला कैद
है”। फिर कहने लगे—“आह, ओ दुष्टा—स्त्री ! ऐसा नीच काम
करने की तुझे क्या सूझी ?”

उस बुढ़िया ने वह कमरा बतलाया, अतः सेठ जी ने तुरन्त
उसका दरवाजा खोल डाला। भीतर घुसकर देखते हैं कि चन्दन-

बाला के पैर में बेड़ी हैं और उसका सिर मुँड़ा हुआ है। उसके मुँह से नक्कार मंत्र की ध्वनि निकल रही है और नेत्रों से आँसुओं की धार बह रही है। कमल को कुम्हलाने में कितनी देर लगती है? चन्दनबाला का सारा शरीर अब तक के कष्टों से कुम्हला गया था।

यह दशा देखकर सेठ के नेत्रों से टपटप आँसू गिरने लगे। वे रोते-रोते बोले—“प्यारी चन्दनबाला! शान्त होजा! बेटा! तू बाहर चल, मुझसे तेरी यह दशा नहीं देखी जाती। तुझे तीन दिन के तो उपवास ही हो गए? हाय, मुझे ऐसी दुष्टा-स्त्री मिल गई?”। यों कह कर सेठ जी रसोईघर में भोजन ढूँढ़ने लगे। किन्तु भाग्यवश वहाँ खाने का सामान कुछ भी न मिला। केवल एक सूप के कोने में थोड़ी-सी उड़द की घूघरी पड़ी थी। सेठ ने वह सूप चन्दनबाला को दिया और कहा—‘बेटा! मैं तेरी बेड़ी काटने के लिए लुहार को बुला लाऊँ, तब तक तू इस घूघरी का भोजन करले’। यों कह कर सेठ बाहर चले गए।

चन्दनबाला देहरी पर बैठ गई। उसका एक पैर भीतर की तरफ था और दूसरा बाहर। यों बैठकर वह विचारने लगी—“अहो! मनुष्य जीवन के कितने रङ्ग होते हैं। जो मैं एक दिन राजकन्या थी, उसकी आज यह दशा है। तीन-दिन के अन्त में, आज ये उड़द के उबले हुए दाने खाने को मिले हैं! किन्तु बिना अतिथि को दिये इनका भी खाना ठीक नहीं है। यदि इस समय कोई अतिथि आजायँ तो बहुत अच्छा हो। इस भोजन में से थोड़ा सा उन्हें देकर फिर मैं खाऊँ।”

आज पाँच-महीने और पच्चीस-दिन होगये, कौशाम्बी में एक महायोगी भिक्षा के लिए घूम रहे हैं। लोग उन्हें भिक्षा देना चाहते हैं, किन्तु वे योगीराज भिक्षा देने वाले की तरफ देखकर वापस लौट जाते हैं।

यह क्यों ! वे किस कारण से भिक्षा नहीं लेते ?

ऐसा मालूम होता है, कि उन्होंने कुछ निश्चय कर लिया है, कि अमुक प्रकार भिक्षा मिलेगी तभी लेंगे ।

किन्तु आखिर ऐसा कौन-सा निश्चय है ? अरे ! वह निश्चय तो बड़ा ही कड़ा है ।

“कोई सती और सुन्दर-राजकुमारी दासी बनी हुई हो, पैरों में लोहे की बेडियां पड़ी हों, सिर मुँड़ा हुआ हो, भूखी हो, रोती हो, एक पैर देहरी के भीतर और दूसरा बाहर रखकर बंठी हो । ऐसी स्त्री सूप के एक कोने में रखी हुई उर्द की घुघरी यदि बहरावे, तो ही भिक्षा लेंगे ।”

अहा ! कैसा कड़ा निश्चय है ।

नगर में राजा रानी और दूसरे सब लोग यह चाहते हैं कि अब यदि योगीराज पारणा करलें, तो बड़ा ही अच्छा हो ।

वे आज भी शहर में भिक्षा के लिए आये । जहाँ बैठी-बैठी चन्दनबाला विचार कर रही थी, वहीं वे योगीराज पधारे । उन्होंने देखा कि मेरी सारी-शर्तें यहाँ ठीक हैं, किन्तु केवल एक बात की कमी है । चन्दनबाला के नेत्रों में आँसू नहीं हैं । यह देखकर वे पीछे लौट चले ।

चन्दनबाला ने देखा कि अतिथि आकर भी बिना भिक्षा लिए ही वापस जा रहे हैं, अतः उसे बड़ा दुःख हुआ । नेत्रों में आँसू भरकर वह कहने लगी—“कृपानाथ ! आप पीछे क्यों जा रहे हैं ? मुझ पर कृपा कीजिए और ये उड़द के उबले हुए दाने ग्रहण कीजिए । क्या मुझे इतना भी लाभ न मिलेगा ।” योगीराज ने देखा कि चन्दनबाला के नेत्रों में आँसू भर आये हैं, अतः उन्होंने अपने हाथ लम्बे कर दिए । चन्दनबाला ने, वह उड़दकी घुघरी (बाकुले) उन्हें बहरा दी ।

ये योगीराज थे कौन ?

ये थे—महायोगी प्रभु महावीर !

इसी समय चन्दनबाला की बेड़ियां टूट गईं । सिर पर सुन्दर बाल हो आये । सारी प्रकृति में एक सुन्दर आनन्द सा छा गया ।

सेठ जब लुहार के यहां से वापस लौटे, तो चन्दनबाला को पहले ही की तरह देखकर बड़े प्रसन्न हुए ।

मूला सेठानी जो उस समय लौट आई थीं, यह देखकर बड़े विचार में पड़ गईं ।

चन्दनबाला ने माता-पिता दोनों ही को प्रणाम किया और फिर मूला माता से कहने लगी—“माताजी ! आपका मुझ पर बड़ा उपकार है । तीनों लोकों के स्वामी प्रभु महावीर का मेरे हाथ से पारणा हुआ, यह आप ही की कृपा का फल है ।”

नगर के लोगों को जब बात मालूम हुई, तब वे झुण्ड के झुण्ड वहाँ आने लगे । राजा-रानी भी वहाँ आये और चन्दनबाला को धन्यवाद देने लगे ।

जिस समय सब लोग धन्यवाद की वर्षा कर रहे थे उसी समय एक सिपाही आकर चन्दनबाला के पैरों पर गिर पड़ा और रोने लगा ।

लोगों ने उससे पूछा—“अरे ! आनन्द के समय तू रोता क्यों है ?” उसने कहा—“भाइयो ! यह तो राजकुमारी वसुमती है । चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की धारिणी नामक रानी की यह कन्या है । कहीं इसका वह वैभव और कहीं आज यह गुलामी की हालत ! मैं इनका सेवक था । जब चम्पानगरी नाश की गई तब शतानिक राजा मुझे पकड़ लाये, जिससे मुझे बड़ा दुःख पहुँचा किन्तु इस राजकुमारी के दुःख के सामने मेरा वह दुःख किस गिनती में है ?”

राजा-रानी भी यह सुनकर आश्चर्य चकित रह गए। रानी बोली—“अरे ! धारिणी तां मेरी बहन लगती है। तू उनकी पुत्री होने के कारण मेरी भी पुत्री है। चल बेटा ! मेरे साथ चल और आनन्द पूर्वक रह ।

चन्दनबाला मृगावती के साथ राजमहल में चली गई।

वहां पहुँचकर चन्दनबाला को अपनी प्यारी माता की याद हो आई और उनका यह मधुर उपदेश याद हो आया, जो उन्होंने मन्दिर में दिया था—

“ये राजमहल के सुख वैभव क्षणिक प्रलोभन मात्र हैं। उनमें भला यह शान्ति कैसे मिल सकती है, जो श्री जिनेश्वर देव के मुख पर दिखाई दे रही है, अहा, इनके स्मरण करने मात्र से दुःख-साग में डूबे हुए को भी शान्ति मिलती है। बेटा ! इनका पवित्र नाम कभी भी न भूलना।”

चन्दनबाला राजमहल में रहती, किन्तु उसका चित्त सदैव भगवान महावीर के ही ध्यान में रहता था। वह न तो वहाँ के वस्त्राभूषणों में लुभाती थी और न वहाँ के मेवा-मिठाइयों में ही। वह न तो बाग बगीचों को ही देखकर मुग्ध होती थी और न नौकर-चाकरों की सेवा देखकर ही। उसके मुँह से सदैव वीर ! वीर ! की ध्वनि निकलती रहती थी।

उसे वीर के आदर्श—जीवन का रंग लगा था। किन्तु अभी तक श्री महावीर को केवलज्ञान नहीं हुआ था, अतः वे न तो किसी को उपदेश ही देते थे और न किसी को अपना शिष्य ही बनाते। चन्दनबाला उनके केवलज्ञान का मार्ग देखती हुई पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी।

थोड़े दिनों के बाद, प्रभु महावीर को केवलज्ञान तो होगया,

अतः चन्दनबाला की इच्छा पूरी हुई । उसने प्रभु महावीर से दीक्षा लेली ।

यही भगवान—महावीर की सर्व-प्रथम और मुख्य साध्वी थीं ।

उन्होंने बड़े कड़े-कड़े तप किए और संयम का सुचारु रूप से पालन किया । इस तरह उन्होंने अपने मन, वचन और काया को पूर्ण-पवित्र बना लिया ।

अनेक राज-रानियाँ तथा अन्यान्य स्त्रियाँ उनकी शिष्या बनीं । छत्तीस-हजार साध्वियों में वे प्रधान आर्या बनाई गईं । १६ सतियों में उनके नाम का नित्य स्मरण किया जाता है ।

आयुष्य पूरा होने पर, महासती-चन्दनबाला निर्वाणपद को प्राप्त हो गईं । उनके शील, तप और त्याग को धन्य है ।

उनके गुणों का जितना भी वर्णन किया जाय, कम है । प्रत्येक बहिन का कर्तव्य है कि वह चन्दनबाला के जीवन को समझे तथा उनका अनुकरण करते हुए, उन्हीं की तरह अपनी आत्मा का कल्याण करे ।

सौभाग्यशाली वीर-धन्ना

दक्षिण देश में गोदावरी नदी के किनारे पर एक बड़ा शहर था। उसका नाम पैठण था। वहाँ एक सेठ रहता था। उसका नाम धनसार था। धनसार सेठ के चार पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे पुत्र का नाम धन्ना था। धन्ना में उसके नाम के अनुसार ही गुण भी थे। उसके जन्मते ही धनसार सेठ के यहाँ धन वृद्धि होने लगी थी।

धन्ना खेलने में बहुत चालाक था। धन्ना के पिता ने धन्ना को आठ वर्ष की अवस्था में पढ़ने के लिए बिठाया। पाठशाला में धन्ना लिखना, पढ़ना, गणित, राग-रागिनी आदि बहुत सी कलायें सीखा और समस्त विद्यायें पढ़ीं। सब लोग धन्ना की प्रशंसा करने लगे, और कहते, कि “धन्ना बहुत हुशियार है।”

धन्ना के बड़े भाई धन्ना की बड़ाई सुनकर ईर्ष्या के मारे जलने लगे। वे आपस में बातें करते हुये कहने लगे, कि धन्ना की इतनी बड़ाई क्यों? उसमें पिताजी तो धन्ना की बड़ाई सीमा से भी अधिक करते हैं। जब देखो तब धन्ना की प्रशंसा की ही बात। वे यही कहा करते हैं कि मेरा धन्ना ऐसा है, मेरा धन्ना वैसा है। समझ में नहीं आता, कि छोटा सा बालक धन्ना ऐसा क्या करता है, जिसके कारण पिताजी उसकी इतनी बड़ाई करते हैं? धन्ना केवल खाता-पीता है तथा चलता फिरता है, तब भी उसकी इतनी बड़ाई करते हैं और हम तीनों भाई व्यापार करके धन कमाते हैं, फिर भी पिताजी हमारी बड़ाई क्यों नहीं करते?”

होते-होते धनसार सेठ को मालूम हुआ कि मेरे तीनों लड़के अपने छोटे भाई से ईर्ष्या करते हैं। स्वयं तो बुद्धिमान तथा विचार-

शील हैं नहीं, और दूसरे की बुद्धिमानी तथा विचार-शीलता इनसे देखी नहीं जाती। यही कारण है कि ये लोग धन्ना से ईर्ष्या करते हैं। इसलिए यह उचित होगा कि चारों लड़कों की परीक्षा लेकर धन्ना की बुद्धि से इन तीन ईर्ष्यालु लड़कों को पराजित किया जावे। ऐसा किए बिना ये तीनों ईर्ष्या न छोड़ेंगे।

(२)

इस प्रकार विचार कर सेठ ने अपने चारों लड़कों को बुलाकर कहा, कि—“ये स्वर्णमुद्रा लो और पृथक्-पृथक् व्यापार करो। संध्या के समय घर लौट जाना, तथा व्यापार से जो आमदनी हो उसीसे हमको भोजन कराना।”

पिता की दी हुई स्वर्णमुद्रा लेकर धन्ना बाजार में आया। वह एक दुकान के सामने खड़ा हो गया। दुकान का सेठ पत्र पढ़ रहा था। उस पत्र के उल्टे अक्षर दूसरी तरफ से दिखाई देते थे। धन्ना ने पत्र की पीठ की ओर से उन उल्टे-अक्षरों को पढ़ा। पत्र में लिखा था, कि—“अभी बंजारे की बालद (काफिला) आती है। उसमें बहुत महँगा किराना है। इसलिये जल्दी से जाकर यह किराना खरीद लेना। ऐसा करने से बहुत लाभ होगा।”

उल्टे अक्षरों को पढ़ने से धन्ना को पत्र का हाल मालूम हो गया। उसने सोचा—चलो, अपना तो बेड़ा पार है। वह नगर के बाहर आया और बंजारे से मिलकर सौदा तय कर लिया। उसी समय वह सेठ भी आगया, सेठ ने बंजारे से कहा—“अरे भाई बंजारे, क्या किराना बेचोगे? सेठ की बात के उत्तर में बंजारा बोला—‘सेठ जी किराने का सौदा तो तय हो चुका है। और खरीदने वाले ये खड़े हैं।’”

बजारे का उत्तर सुनकर सेठ आश्चर्य में पड़ गया और कहने

लगा कि—यह मेरा दोस्त किराना खरीदने के लिए कहाँ से आ गया ? अब मैं इसी से किराना खरीद लूँ। सेठ ने धन्ना से पूछा—कि “क्यों भाई, किराना बेचना है ?” धन्ना ने उत्तर दिया “हाँ बेचना है”। सेठ ने फिर पूछा—कि—“क्या लोभे” ? धन्ना बोला—“नफे की सवा लाख सोने की मुहरें लूँगा।” सेठ ने कहा—“अच्छा ऐसा ही सहो, तुम नफा ले लो और मुझे किराना दे दो।”

धन्ना ने सेठ से नफा के सवा लाख स्वर्ण मुद्रा ले लीं और घर की ओर रवाना हुआ।

धन्ना के तीनों बड़े-भाई व्यापार करके धन प्राप्त करने के लिए बाजार में गए। उन्होंने खूब दौड़ घूष की, परन्तु काफी लाभ न हुआ। संध्या होगई। पिता के हुक्म के मुताबिक संध्या के समय घर को लौटना आवश्यक था, इसलिए तीनों भाई घर की तरफ चले।

चारों भाई घर आये। तीनों बड़े-भाइयों की आय बहुत कम हुई थी, इसलिए इन तीनों में से एक भाई मूँग लाया, दूसरा भाई चावल लाया, और तीसरा भाई उड़द लाया। लेकिन धन्ना कुटुम्ब को भोजन कराने के लिए मेवा-मिठाई लाया। और साथ ही भाभियों को देने के लिये अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण भी लाया।

सारा कुटुम्ब धन्ना पर प्रसन्न हुआ, लेकिन उन तीनों-भाइयों के मुँह उतर गये। वे कहने लगे कि—“धन्ना ने ठगवाई की है, उसने बेचारे सेठ का उल्टा कागज पढ़ लिया था। इस प्रकार ठगवाई करना, व्यापार नहीं है। व्यापार में धन्ना की परीक्षा करने पर मालूम हो जायेगा, कि धन्ना प्रशंसा के योग्य है, या हम प्रशंसा के योग्य हैं।”

धनसार सेठ ने अपने तीनों लड़कों को समझाते हुए कहा—

“बच्चो, समझो, ईर्ष्यालु होना अच्छा नहीं है।” तीनों लड़कों ने कहा कि ठीक, हम तो ईर्ष्यालु हैं, एक आपका धन्ना ही अच्छा है।”

(३)

तीनों भाई धन्ना की बड़ाई से अब और भी अधिक जलने लगे। सेठ ने कहा, कि—“अच्छा, मैं फिर से तुम चारों की परीक्षा लेता हूँ।” सेठ ने अपने चारों पुत्रों को बुलवाया और उन्हें थोड़ी-थोड़ी सोने की मुहरें देकर कहा—इस बार होशियारी से काम लेना। इन सोने की मुहरों से व्यापार करके संध्या के समय घर लौट आना। और जो आमदनी हो, उससे सबको भोजन कराना।”

चारों भाई व्यापार करने चले। धन्ना के तीन भाई बहुत घूमे, लेकिन उनकी समझ में यही न आया कि हम कौनसा व्यापार करें।

धन्ना पशुओं के बाजार में गया। पशुओं के बाजार में गाँव भैंसों, घोड़े, ऊँट, बकरे, भेड़ें आदि बहुत से पशु थे। धन्ना ने वहाँ एक अच्छा सा भेड़ा खरीदा। भेड़ा बहुत तगड़ा अच्छा था।

भेड़ा लेकर धन्ना बाजार में चला। मार्ग में धन्ना को राजकुमार मिले। उनके साथ भी अपना भेड़ा था और वे सबके साथ बाजी लगाकर उनके भेड़े से अपना भेड़ा लड़ाते थे।

भेड़ा लिए हुए धन्ना को देखकर राजकुमार ने धन्ना से कहा—“सेठ पुत्र, भेड़ा लड़ाना है?” धन्ना ने कहा कि—“प्रसन्नता से लड़ाइये।” राजकुमार बोले कि—“भेड़ा लड़ाने में एक शर्त है, जिसका भेड़ा हारेगा, वह सवा लाख सोने की मुहरें देगा।” धन्ना ने उत्तर दिया कि—“मुझे यह शर्त स्वीकार है।” धन्ना ने अपना भेड़ा राजकुमार के भेड़े से लड़ाया। राजकुमार का भेड़ा धन्ना के भेड़े से हार गया, इसलिए राजकुमार ने धन्ना को सवा लाख सोने की मुहरें दे दीं।

राजकुमार ने विचारा, यह भेड़ा बहुत अच्छा है। इस भेड़े को ले लेवें, बहुत जीत होगी, इसलिये इसे खरीद लें। इस प्रकार विचार कर राजकुमार ने धन्ना से कहा—“सेठ, भेड़ा बेचना है।” धन्ना ने उत्तर दिया “हां, पर इसकी कीमत बहुत है।” राजकुमार ने पूछा कि “कीमत कितनी है?” धन्ना ने कहा—“सवालाख सोने की मुहरें” राजकुमार बोला—“ये सवालाख मुहरें लो और यह भेड़ा मुझे दे दो।” धन्ना ने भेड़ा राजकुमार को देकर सवालाख सोने की मुहरें ले लीं।

धन्ना, कैसा भाग्यवान था, कि उसे अढ़ाईलाख सोने की मुहरें मिल गईं। उसके बड़े भाई बहुत दौड़े, लेकिन किसमत के फूटे थे। उन्हें कोई आमदनी नहीं हुई। चारों भाई घर आये। सब लोग धन्ना की बड़ाई करने लगे। धन्ना की बड़ाई सुनकर उन तीनों भाइयों के मुँह उतर गये। वे कहने लगे, कि “धन्ना ने तो जूआ खेला था। शर्त लगाना जूआ ही कहलाता है। जूआ खेला था, उसमें कभी हार गया होता तो क्या दशा होती? जूआ खेलना व्यापार नहीं कहलाता, व्यापार में धन्ना की परीक्षा करो।”

धनसार सेठ ने अपने बड़े लड़कों से कहा “लड़को! पागल मत बनो। किसी को अच्छा देखकर प्रसन्न होना चाहिये। उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। पिता की बात सुनकर तीनों लड़कों ने उत्तर दिया” अच्छा, हम तीनों तो बेवकूफ हैं और आपका एक धन्ना ही समझदार है।

(४)

सज्जन, संबंधी, जाति-न्याति में धन्ना की खूब बड़ाई होती थी। धन्ना के तीनों बड़े भाइयों से धन्ना की बड़ाई सही न जाती। वे सदा ही कुढ़ा करते।

सेठ ने सोचा कि लाओ, एक बार फिर इन सब की परीक्षा

करें। इस प्रकार विचार कर सेठ ने अपने सब लड़कों को बुलाया। लड़कों को थोड़ी थोड़ी सोने की मुहरें देकर सेठ ने सबसे कहा—कि “इस बार भूल मत जाना, सब ध्यान रखकर इस सोने की मुहरों से कमाई करना। संध्या के समय सब घर को लौट आना। और अपनी आमदनी सबको बताना।”

सब लड़के सोने की मुहरें लेकर चले। एक भाई एक तरफ गया और दूसरा भाई दूसरी तरफ गया। इस तरह चारों भाई पृथक्-पृथक् हो गये।

धन्ना बाजार में गया। बाजार में एक सुन्दर पलंग बिक रहा था, लेकिन बेवने वाला शमसान का भंगी था, इसलिये कोई लेता न था। पलंग को देखकर धन्ना ने विचार किया, कि पलंग में निश्चय ही कोई करामात है, इसलिये पलंग को खरीद लेना अच्छा रहेगा। इस प्रकार विचार कर धन्ना ने उस बिकते हुए पलंग को ले लिया।

वे तीनों भाई खूब दौड़े, घूमे, लेकिन कुछ न कमा सके। निराश होकर घर लौटे। घर में धन्ना के लाए हुए पलंग को देखकर तीनों भाइयों ने छनसार सेठ से कहा—पिताजी, अपने समझदार लड़के को देखो, यह पलंग तो मुरदे का है। इसे क्या घर में रखा जा सकता है? हम तो इस पलंग को घर में न रहने देंगे। इस प्रकार कहकर तीनों भाई उठे और उस पलंग को उठाकर बाहर पटक दिया। पटक देने से पलंग की पट्टी व पाये अलग-अलग हो गए और इसमें से बड़े कीमती रत्न निकले।

तीनों भाई चकित रह गए और मुँह में अँगुली दबाकर इन रत्नों की ओर देखने लगे। सेठ ने तीनों लड़कों से कहा—कि कहो धन्ना को बड़ाई न सह सकने वाले लड़को! धन्ना की परीक्षा हो गई या और बाकी है?” तीनों भाई पिता से कहने लगे कि हाँ

पिता जी, हम सब तो दूसरे की उन्नति न देख सकने वाले हैं। और एक आपका धन्ना ही अच्छा है। आप हमारी कभी भी बड़ाई नहीं करेंगे।

(५)

एकबार गोदावरी नदी में एक जहाज आया। जहाज में बहुत कीमती किराना भरा हुआ था। किराने का स्वामी मर गया था, इसलिए सब किराना राजा के अधिकार में आगया। राजा ने सब व्यापारियों को एकत्रित होने तथा जहाज का किराना खरीदने की आज्ञा दी। सब व्यापारी इकट्ठे हुए।

धनसार सेठ के यहाँ भी राजा का बुलावा आया कि आप आपने यहाँ से भी किसी एक व्याक्त को राजा का बिकता हुआ किराना खरीदने के लिए भेजिए। राजा के बुलावे पर धनसार सेठ ने अपने सबसे बड़े लड़के से कहा, “धन्नदत्त, किराना खरीदने के लिए जा” धन्नदत्त ने पिता के उत्तर में कहा-कि “प्रशंसा करने के लिए तो धन्ना याद आता है। और काम करने के लिए धन्नदत्त से क्यों कहते हैं ? मैं तो नहीं जाता। आपका समझदार लड़का ही जायगा।”

धनसार सेठ ने अपने दूसरे तथा तीसरे लड़के से भी राजा का किराना खरीदने के लिए जाने को कहा। लेकिन उनने भी धनदत्त की तरह ही उत्तर दे दिया। तब धनसार सेठ ने धन्ना से कहा-“बेटा, तू जा।” धन्ना ने कहा “जो पिता की आज्ञा है, वही करूँगा।” यह कहकर धन्ना किराना खरीदने गया।

जहाज पर सब व्यापारी एकत्रित हुए। जहाज के किराने में से किसी व्यापारी ने केशर, किसी ने कस्तूरी, और किसी ने बरास लिया। इसी प्रकार कपूर, चन्दन, अगर, आदि समस्त अच्छा-अच्छा किराना ले लिया। पीछे से केवल नमक की तरह की मिट्टी का ढेर ही रह गया।

सब व्यापारियों ने कहा, कि “यह मिट्टी का ढेर धन्ना को दे दो। धन्ना अभी लड़का है” “समझदार तो है नहीं। इसलिये यह मिट्टी इसी को दे दो। एक व्यापारी धन्ना से बोला कि “धन्ना तू व्यापार का प्रारंभ करता है, इसलिये यह नमक ले जा। इस नमक को ले जाने से व्यापार का बहुत अच्छा शकुन होगा। दूसरे व्यापारियों ने पहले व्यापारी के इस कथन का समर्थन करते हुये धन्ना से कहा, कि “यह सेठ जी ठीक कहते हैं।” धन्ना समझ गया, कि “यह सब लोग मुझे उल्लू बनाते हैं, लेकिन देखता हूँ उल्लू कौन बनता है !” इस प्रकार विचार कर धन्ना ने कहा “मेरे भाग्य में यह नमक है तो कोई हर्ज नहीं, मैं इसे ही ले लूँगा।”

धन्ना इस नमक को लेकर घर आया। धन्ना के द्वारा लाई हुई नमक की सी मिट्टी को देखकर तीनों भाई पिता से कहने लगे कि “पिताजी ! अपने समझदार लड़के की करतूत देखो। हम कहते ही थे, सच्चे व्यापार में परोक्षा होती है। शहर में और सबने तो अच्छा अच्छा किराना खरीद लिया, लेकिन भाई ने मिट्टी खरीदी। कहिये धन्ना बहुत होशियार है न ?”

धनसार सेठ धन्ना से पूछने लगे, कि “धन्ना ! तू यह मिट्टी क्यों लाया ! तुझे कोई अच्छा किराना नहीं मिला ? धन्ना ने उत्तर दिया कि—“पिताजी, यह मिट्टी नहीं है, तेजंतुरी है। कड़ाही को गरम करके उसमें तेजंतुरी डाल देने से सोना बन जाता है। धन्ना के कथनानुसार प्रयोग करके देखा, तो सचमुच सोना बन गया। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। और धन्ना बहुत धनवान बन गया।

(६)

धन्ना के तीनों भाइयों ने धन्ना से ईर्ष्या करना नहीं छोड़ा। वे नित्य कलह किया करते। धन्ना ने विचार किया कि “भाइयों का

यह द्वेष अच्छा नहीं है। मेरे कारण दूसरे भाइयों को दुःख होता है इसलिये मेरा यहाँ से निकल जाना ही अच्छा है। यहाँ से निकल कर मैं परदेश जाऊँगा। और वहाँ उद्योग करके मोज करूँगा।” अपने भाग्य की परीक्षा भी हो जायगी।

इस प्रकार निश्चय करके धन्ना एक दिन जल्दी उठा। और घर से बाहर निकल कर परदेश के लिये चल दिया।

धन्ना चलता हुआ और बहुत कुछ देखता हुआ एक नगर के बाहर आया। उस नगर का नाम राजगृह था। नगर के बाहर एक सूखा हुआ बाग था। उस सूखे हुए बाग में ही धन्ना रात के समय ठहर गया। “भाग्यशाली के पाँव जहाँ पड़ें, वहाँ क्या नहीं होता?” इसके अनुसार जिस सूखे बाग में धन्ना रात के समय रहा था, सवेरे वह सूखा बाग हरा दीखने लगा।

बाग के माली ने बाग हरा होने की सूचना बाग के मालिक सेठ को दी। यह सूचना पाकर सेठ बहुत हर्षित हुआ। सेठ ने धन्ना को अपने यहाँ बुलाया। धन्ना सेठ के यहाँ गया। सेठ ने धन्ना को भोजन कराया और बहुत सम्मान किया। फिर सेठ ने धन्ना से बातचीत की। बाग के हरा होने से तथा बातचीत से सेठ समझ गया, कि यह कोई भाग्यवान पुरुष है। धन्ना को प्रतापी पुरुष जानकर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।

धन्ना बड़ा भाग्यवान् था। जहाँ उसके पाँव पड़ते थे, वहाँ धन का ढेर लग जाता था। धन्ना जहाँ भी गया, वहाँ से खूब धन मिला। यहाँ भी वह बड़ा सेठ हो गया।

राजगृह में एकबार राजा का हाथी मस्त हो गया। उस मस्त हाथी को कोई भी वश में न कर सका। राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई इस हाथी को वश में करेगा, उसके साथ मैं अपनी राज-

कुमारी का विवाह कर दूँगा । धन्ना बहुत साहसी था । ढिंढोरे को सुनकर उसने हाथी को वश में कर लिया । राजा ने अपनी कुमारी का विवाह धन्ना के साथ कर दिया । इससे सारे नगर में धन्ना का बहुत मान बढ़ गया ।

उसी राजगृह नगर में एक करोड़पति सेठ रहता था । उस सेठ का नाम गौभद्र था । गौभद्र के यहाँ एक काना आदमी आया । वह काना आदमी गौभद्र सेठ से कहने लगा कि—“सेठ आप अपने एक लाख रुपये लीजिये और मेरी जो आंख आपके यहाँ गिरवी रखी है, वह लाइये । सेठ ने उस काने को उत्तर दिया, कि—“तुम्हारी बात बिलकुल झूठ है । ऐसा होना कदापि संभव नहीं । सेठ ने यह उत्तर दे दिया, लेकिन वह काना आदमी क्यों मानने लगा ? उसे तो सेठ के गले पड़ना था । आखिर को सेठ से काने ने लड़ाई की और वह राजा के पास न्याय माँगने के लिये गया । राजा समझ तो गया कि यह काना आदमी ठग है, लेकिन वह इस विचार में पड़ गया कि इस काने आदमी को झूठा कैसे ठहराया जाय ?

यह बात धन्ना को मालूम हुई । धन्ना राजा के दरबार में गया और राजा से कहा—कि यदि आज्ञा हो तो इस मामले का न्याय मैं कर दूँ । राजा ने उत्तर दिया कि—अच्छी बात है, तुम्हीं इसका न्याय करो ।

धन्ना ने सेठ और उस ठग, दोनों को बुनाया और न्याय के लिये ठग से कहा कि सेठ के यहाँ बहुत सी आंखें गिरवी हैं उन आंखों में यह पता कैसे लग सकता है, कि कौनसी आंख किसकी है, इसलिये तुम्हारी जो आंख सेठ के यहाँ गिरवी रखी है, उसका नमूना लाओ और अपनी आंख ले जाओ । धन्ना के इस कहने से ठग पकड़ा गया । वह, आंख का नमूना कहां से दे सकता था ? यदि नमूने के लिये अपनी आंख देता है तो अन्धा हो जाता है, इस प्रकार इस काने की ठगी सिद्ध हुई और राजा ने उसे दण्ड दिया ।

धन्ना के न्याय से गौभद्र सेठ बहुत हर्षित हुये। गौभद्र सेठ ने अपनी कन्या का विवाह धन्ना के साथ कर दिया। उस कन्या का नाम सुभद्रा था।

(७)

एक दिन धन्ना खिड़की में बैठा हुआ नगर को देख रहा था। उसने थोड़े से भिखारियों को देखा, जो उसके कुटुम्बो जैसे जान पड़ते थे। धन्ना ने पता लगाया, तो मालूम हुआ कि ये भिखारी उसके कुटुम्बो ही हैं। धन्ना विचारने लगा, मेरे कुटुम्बो इस दशा में कैसे हैं ?

उसने अपने कुटुम्बियों से इस स्थिति में पहुँचने का कारण पूछा। धन्ना के पिता ने उत्तर में कहा, कि— 'बेटा, भाग्यवान् की बलिहारी है। जब तक तू था, तब तक सभी तरह से आनन्द था, लेकिन घर से तेरे जाते ही धन भी चला गया। राजा को तेरे चले जाने की खबर मिलने पर उसने हमको बहुत हैरान किया। हमारा धन छीनकर हमें भिखारी बना दिया। इस भिखारीपने से हम वहाँ कैसे रह सकते थे ? इसलिये हम उस प्रदेश से चल दिये।'

धन्ना ने अपने कुटुम्बियों को अपने साथ रख लिया। वह सबको अच्छा-अच्छे भोजन कराता, सबको अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनाता, सबकी अभिलाषा पूरी करता।

राजगृह के सब लोगों को धन्ना बहुत प्रिय था। सब लोग धन्ना को ही पूछा करते थे। धन्ना के भाइयों को तो कोई पूछता ही न था। सब धन्ना की ही बड़ाई करते थे। धन्ना के भाइयों को यह बात सहन न हुई। वे पिता के पास आकर बोले,— 'पिताजी, आप हमारा भाग अलग करके हमें दे दीजिये। धन्ना के साथ रहना हमें स्वीकार नहीं है।'

(८)

पिता ने कहा —“बच्चो, तुम किस वस्तु में अपना भाग चाहते हो ? यह सब सम्पत्ति तो धन्ना की है । तुम्हारे शरीर पर तो कपड़ा भी न था, फिर भाग कैसा चाहते हो ? धन्ना की सम्पत्ति, तुम लोगों में नहीं बँट सकती ।” धन्ना के तीनों भाई कहने लगे, कि—“हम सब कुछ जानते हैं । धन्ना घर से रत्न चुराकर यहाँ भाग आया है । हमें हिस्सा दीजिए, नहीं तो फजीहत होगी ।

भाइयों की बातों को सुनकर धन्ना विचारने लगा, यह तो फिर से कलह प्रारंभ हुआ । मेरे को कलह अच्छा नहीं लगता, इसलिए परदेश जाऊँगा और वहाँ कमाऊँगा तथा आनन्द करूँगा ।

इस प्रकार विचार करके धन्ना प्रातःकाल जल्दी उठकर चल दिया । धन्ना, कौशाम्बी नगर में आया । कौशाम्बी के राजा के दरबार में मणि की परीक्षा हो रही थी । उस मणि की परीक्षा कोई न कर सका । धन्ना द्वारा उस मणि की परीक्षा कर लेने के कारण राजा ने अपनी लड़की धन्ना के साथ विवाह दी ।

यहाँ धन्ना ने धनपुर नाम का ग्राम बसाया । धनपुर ग्राम में और सब बातों का सुख था, लेकिन पानी का बड़ा दुख था । इस दुख को मिटाने के लिए धन्ना ने तालाब खुदवाना शुरू किया ।

धन्ना हमेशा उस तालाब पर यह देखा करता, कि कितना काम हुआ है । तालाब पर एक दिन धन्ना ने अपने परिवार को देखा । परिवार के लोग तालाब पर मजदूरी करके अपनी गुजर चलाते थे । धन्ना ने पहले तो परिवार के लोगों से अपनी जान पहिचान नहीं की, लेकिन फिर जान पहिचान करके उनसे सब बात पूछी । पिता ने उत्तर दिया, कि बेटा, तेरे जाने की खबर राजा को हुई, इसलिए राजा ने हमारा तिरस्कार किया । इसी

कारण हमारी यह दशा हुई है। पिता का उत्तर सुनकर धन्ना को बहुत दुःख हुआ। उसने परिवार को अपने साथ रखकर फिर सुखी किया।

धन्ना ने धनवान कुटुम्बों की ओर भी चार कन्याओं के साथ विवाह किया। उसके सब मिल कर ८ स्त्रियां हो गईं। अब वह राजगृह नगर में रहने लगा। उसके माता पिता अनशन करके मृत्यु को प्राप्त हुये।

(६)

एकवार धन्ना स्नान करने के लिए बैठा था, 'सुभद्रा' स्नान करा रही थीं। सुभद्रा की आँखों में से टपटप आंसू गिरते थे।

धन्ना ने पीछे की ओर देखा, तो सुभद्रा रोती हुई दिखाई दी। धन्ना ने सुभद्रा से रोने का कारण पूछा। उत्तर में सुभद्रा कहने लगी, कि—'मेरे भाई शालिभद्र को वैराग्य हुआ है, वह नित्य एक स्त्री को त्यागता है और इस प्रकार ३२ स्त्रियां छोड़नी हैं।' धन्ना बोला, कि—'तुम्हारा भाई बहुत कायर है, ऐसा करना कहीं वैराग्य कहलाता है? वह सब स्त्रियों को एक साथ ही क्यों नहीं छोड़ देता।

सुभद्रा बोली—'स्वामीनाथ ! बोलना तो सहज है, लेकिन करना बहुत कठिन है।' धन्ना ने कहा—'ऐसा है?' सुभद्रा ने उत्तर दिया—'हां ! धन्ना ने कहा कि, 'मैं इसी समय सभी स्त्रियों को छोड़ देता हूँ।'

सुभद्रा समझ गई, कि यह हँसी करते खाँसी हुई। सुभद्रा और धन्ना की अन्य स्त्रियों ने बहुत समझाया, लेकिन धन्ना अपने निश्चय पर से न टला। तब धन्ना की स्त्रियों ने कहा, 'यदि आप नहीं मानते हैं तो हम भी आपके साथ ही दीक्षा लेंगी।' धन्ना ने उत्तर दिया,

“यह तो बड़े आनन्द की बात है।” धन्ना की स्त्रियां भी दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गईं।

धन्ना शालीभद्र के घर आया, और आवाज दी—“अरे कायर, वैराग्य ऐसा होता है ? मैं आठ स्त्रियों सहित चलता हूँ। तेरे को भी चलना हो तो बाहर निकल।” शालीभद्र के मन में व्रत लेने का जोश तो था ही, ऐसे ही समय में धन्ना की यह बात सुनी। इस कारण उसका जोश बढ़ गया।

इतने में ही समाचार मिला कि भगवान महावीर समीप के पहाड़ पर पधारे हैं। यह बात सुनकर धन्ना और शालीभद्र दोनों ही बहुत आनन्दित हुए। धन्ना ने अपनी स्त्रियों सहित दीक्षा ली। शालीभद्र ने भी आकर दीक्षा ले ली।

अब धन्ना और शालीभद्र बड़े विकट तप करने लगे। किसी समय एक मास का उपवास करते, तो किसी समय दो मास का उपवास करते। किसी समय तीन मास और किसी समय चार मास का उपवास करते। इस प्रकार धन्ना, शालीभद्र, जो बड़े विलासी थे, अब महान तपस्वी होगये।

दोनों महान तपस्वियों ने, बहुत समय तक तप किया, मन तथा वचन को बहुत पवित्र बनाया। अन्त में महातपस्वी की भांति उन्होंने अपना जीवन सफल किया।



६ बुद्धिनिधान अभयकुमार

(१)

वेणातट नामक एक ग्राम था। इस गांव में अभय नामक एक लड़का रहता था। यह बहुत अधिक बुद्धिमान, बड़ा होशियार और पढ़ने-लिखने तथा खेलने-कूदने में बड़ा तेज था।

अभय एक दिन खेलने गया। वहाँ खेल ही खेल में लड़ाई हो गई। इतने में एक लड़का-अभय से बोला-“अरे बिना बाप वाले उधर बैठ, इतनी तेजी किसके बल पर दिखला रहा है? अभय बोला-“जरा विचार कर बोल, मेरे पिता तो अभी मौजूद ही हैं, क्या तू भद्र सेठ को नहीं पहिचानता”? वह लड़का कहने लगा—“अरे वे तो तेरी माँ के पिता हैं, तेरे पिता कहाँ से हो गए?”

यह बात सुनकर अभय अपने घर आया और अपनी माता से पूछने लगा—“माताजी, मेरे पिताजी कहाँ हैं?” माता ने उत्तर दिया—“बेटा, वे दुकान पर होंगे” अभय ने फिर कहा—“वे तो आपके पिता हैं, मैं तो अपने पिता को पूछ रहा हूँ?” अभय की यह बात सुनकर नंदा अत्यन्त दुःखी हो गई और नेत्रों में आँसू भरकर यों कहने लगी।

“सुन बेटा! एकबार यहां एक मुसाफिर आये। वे रूप गुण, तथा तेज की खान थे। सब तरह से वे बड़े प्रतापी और योग्य मालूम हुए, अतः पिताजी ने उनके साथ मेरा विवाह कर दिया। अभी विवाह के कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन परदेश से कुछ ऊँट सवार आये। उनमें से कुछ सवार नीचे उतरे और तुम्हारे पिताजी को एकान्त में बुलाकर उनसे कुछ बातचीत की। उन

सवारों की बात सुनकर, तुम्हारे पिता तत्क्षण जाने को तैयार हुए। उन्होंने मुझसे कहा—“मेरे पिताजी मृत्यु शैया पर पड़े हैं, अतः मैं उनसे मिलने जाता हूँ। तुम अपने शरीर की रक्षा करना और अच्छी तरह रहना।” यह कहकर उन्होंने मुझे एक चिट्ठी दी और आप उन आये हुए सवारों के साथ चले गये। वे जब से गये तब से फिर नहीं लौटे। वर्षों व्यतीत होगये। प्रतिदिन सूर्य उदय होकर अस्त हो जाता है, किन्तु प्यारे बेटा अभय। इतने अधिक इन्तजार के बाद भी आज तक उनका कुल पता नहीं है।

अभय ने माता से कहा—“मां मुझे वह चिट्ठी दिखलाओ, मैं देखूँ तो सही कि उस चिट्ठी में आखिर क्या लिखा है ?”

माता ने वह चिट्ठी दे दी, उसे पढ़कर अभय फिर बोला—“मां आप चिन्ता न कीजिये मेरे पिता तो राजगृह के राजा हैं।”

नन्दा ने बड़े आश्चर्य से पूछा—“क्या सचमुच तेरे पिता राजगृह के राजा हैं ?”

अभय—“हाँ ! इस चिट्ठी का जो ऐसा ही अर्थ है।”

नन्दा, यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। किन्तु इसके बाद ही यह सोचकर वह बहुत दुखी होगई, कि मैं ऐसे अच्छे पति के वियोग में यहां पड़ी-पड़ी दिन बिता रही हूँ। अभय ने, अपने जीवन में नन्दा को पहली बार इतना दुखी देखा था, इसलिये उसे भी बड़ा दुःख हो आया वह कहने लगा—“मां। आप जरा भी चिन्ता न कीजिये; चलो हम लोग राजगृह को चलें, वहां अवश्य ही मेरे पिताजी से मुलाकात होगी।”

(२)

राजगृह उस काल में मगधदेश की राजधानी थी। उसकी

शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उस नगर में महलों, मन्दिरों, बाजारों तथा चौकों की सुन्दरता अपार थी।

नन्दा और अभय दोनों राजगृह आये और वहाँ आकर एक मनुष्य के यहाँ ठहरे। उसके बाद अभय शहर की शोभा देखने को निकला। वहाँ उसने एक स्थान पर बहुत से मनुष्यों की भीड़ जमा देखी। यह देखकर अभय ने विचार किया कि, आखिर ये लोग यहाँ पर क्यों इकट्ठे हुए हैं? अवश्य ही कोई देखने के वाञ्छित बात यहाँ होगी। अच्छा मैं स्वयं ही पूछ कर देखूँ कि आखिर मामला क्या है? उसने भीड़ के पास जाकर एक बूढ़े से पूछा—“बाबा! यहाँ क्या बताने बांटे जा रहे हैं?”

बूढ़े ने कहा—“भाई! तभी तो बताने बहुत अच्छे लगते हैं, किन्तु यहाँ तो बतानों से भी अच्छी चीज बांटी जा रही है।”

अभय—“वह क्या?”

बूढ़ा—वह है, महाराजा श्रेणिक का प्रधानमन्त्री पद। उनके यहाँ प्रधानमन्त्री का पद आजकल खाली है। यों तो यहाँ चारसौ निन्तानवे कार्यकर्ता हैं, किन्तु उनमें एक भी ऐसा नहीं है, जो प्रधानमन्त्री के पद का कार्य कर सके। उस स्थान पर तो वही मनुष्य कार्य कर सकता है, जो बुद्धि का भंडार हो। यही कारण है, कि राजा ने ऐसे मनुष्य की खोज करने के लिये खाली कुएँ में अँगूठी डलवाकर यह घोषित किया है कि जो मनुष्य कुएँ के किनारे पर खड़ा होकर इस अँगूठी को निकाल देगा, उसे ही मैं अपने प्रधानमन्त्री का पद दूँगा।

यह सुनकर अभय उस भीड़ में घुसा और वहाँ इकट्ठे हुए मनुष्यों को सम्बोधन कर बोला—“अरे भाइयो! आप लोग इतनी अधिक चिन्ता में क्यों पड़े हैं, कुएँ में से अँगूठी निकालना कौनसी बड़ी बात है?”

उन मनुष्यों ने कहा भाई—“यह तुम्हारा काम खेल नहीं है। इसमें बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि भी चकरा रही है, तो तुम क्या कर सकते हो ?”

अभय बोला—“जी हाँ, मेरे लिये तो यह काम खेल ही है, किन्तु क्या मेरे समान परदेशी मनुष्य भी इस परीक्षा में भाग ले सकता है ?”

मनुष्यों ने उत्तर दिया—“इसमें क्या बात है ? कहावत मशहूर है, कि ‘जो गाय चरावे’ वही ग्वाला।” यदि तुम सचमुच इसे निकाल सको, तो अवश्य ही तुम्हें प्रधानमन्त्री पद मिलेगा।

अभय कुएँ पर आया। उसे देखकर लोग आपस में कानाफूसी करने लगे—कि यह लड़का क्या कर सकता है ?” कुएँ पर पहुँच कर अभय ने ताजा गोबर मँगवाया और उसे अँगूठी के ऊपर डाल दिया। इसके बाद थोड़ी सी सूखी घास मँगवाई, उसे मुलगाकर ठीक उसी गोबर पर डाल दी। आग की गर्मी के कारण वह गोबर सूख गया और वह अँगूठी भी उसी में चिपक गई। फिर उसने पास ही के एक पानी से भरे हुए कुएँ पर से उस कुएँ तक एक नाली खुदवाई और उसीके द्वारा उस खाली कुएँ में पानी भरना शुरू किया। भरते-भरते जब पानी ऊपर तक आगया तब वह कंड़ा भी ऊपर आ गया। अभय ने उस कंड़े को उठा लिया और उसमें से वह अँगूठी निकाल ली। जितने लोग खड़े थे वे सब अभय की चतुराई देखकर बोल उठे, “इस लड़के की बुद्धि तो कमाल है।”

राजा के ज्ञा सिपाही प्रोजूद थे, उन्होंने जाकर राजा से यह बात कही। राजा ने तत्क्षण अभय को बुलाया और उससे पूछा—“बेटा, तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहां के रहने वाले हो ?”

अभय—“मैं वैणातट का रहने वाला हूँ और मेरा नाम अभय है।”

श्रेणिक—“तुम अपने यहाँ के भद्र सेठ को जानते हो ?”

अभय—हाँ, महाराज, “बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।”

श्रेणिक—“उनकी नन्दा नामक पुत्री गभंवती थीं, उसके क्या हुआ था ?

अभय—“महाराज, उसके पुत्र हुआ था।”

श्रेणिक—“उस लड़के का नाम क्या रखा गया ?”

अभय—“महाराज, सुनिये ! आप जिस समय भयंकर युद्ध कर रहे हों, उस समय आपका शत्रु आपसे भयभीत हो जाय। फिर वह अपने मुँह में एक तिनका लेकर आपके सामने आवे, तो बतलाइये, उस समय वह आपसे क्या माँगेगा ?

श्रेणिक—“अभय”

अभय—“महाराज, तो उसका भी यही नाम है, उसकी और मेरी बड़ी गाढ़ी मित्रता है। किन्हीं मित्रों के मन तो एक होते हैं किन्तु शरीर अलग-अलग होते हैं। परन्तु मेरा और उसका मन तो एक है ही पर शरीर भी एक ही है।”

श्रेणिक—“तो क्या तुम स्वयं अभय हो।”

अभय—“हाँ, पिताजी, आपका सोचना ठीक है।

श्रेणिक—“तो नन्दा कहाँ और किस तरह है ?”

अभय—“पिताजी, वे नगर के बाहर एक भले आदमी के यहाँ ठहरी हुई हैं और आपके वियोग में अत्यन्त दुखी हैं।”

अभय की बात सुनकर राजा श्रेणिक बड़े प्रसन्न हुए। वे बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजे से नन्दा को शहर में ले आये और उसे अपनी पटरानी बनाया। अभय को उन्होंने अपने प्रधानमन्त्री का पद दे दिया।

(३)

जहाँ अभय के समान बुद्धिमान-प्रधान हों, वहाँ किस बात

का दुख रह सकता है ? राजा श्रेणिक को जब कभी किसी आपत्ति का सामना करना पड़ा, तभी अभयकुमार ने अपनी बुद्धि से उस संकट को दूर कर दिया। वे सदैव राजा की सहायता के लिए तैयार रहते थे।

एकबार राजा श्रेणिक चिन्ता में बैठे थे। उसी समय अभयकुमार वहाँ आये। राजा को चिन्तित देख, उन्होंने पूछा—“पिताजी, आप चिन्ता में क्यों बैठे हैं ? श्रेणिक ने उत्तर दिया। वंशाली के राजा चेड़ा ने मेरा अपमान किया है। उनके दो सुन्दर कन्यायें हैं, उनमें से एक के साथ मैंने अपना विवाह करने की इच्छा प्रकट की। उत्तर में उन्होंने कहा—“तुम्हारा कुल मेरे कुल की अपेक्षा हल्का है, अतः मेरी कन्या तुम्हें नहीं दी जा सकती।” अभयकुमार ने कहा कि—“ओहो, यह कौनसी बड़ी बात है ? छः महीने के अन्दर ही मैं उन दोनों कुमारियों का विवाह आपके साथ करवा दूँगा। पिताजी, आप जरा भी चिन्ता न कीजिये।”

घर आकर अभय ने अपने नगर के चतुर चित्रकारों को बुलवाया और उनसे कहा—“महाराज श्रेणिक का एक सुन्दर चित्र तैयार करो। अपनी सारी कला लगाकर उसे अच्छे से अच्छा बनाओ और ध्यान रखो कि उसमें जरा भी कसर न रहने पावे।” चित्रकारों ने रात दिन परिश्रम करके एक सुन्दर चित्र तैयार किया। अभय ने भी चित्रकारों को खूब इनाम देकर प्रसन्न किया।

(४)

उस चित्र को लेकर अभयकुमार वंशाली आये। वहाँ आकर उन्होंने अपना नाम धनसेठ रखा। और राजमहल के नीचे अपनी दुकान खोली। उनकी दुकान पर तरह-तरह के इत्र-तेल आदि बिकते और दूसरी भी अनेक प्रकार की वस्तुयें बिकती थीं। धनसेठ बड़ी मीठी वाणी बोलते थे। जो ग्राहक उनके यहाँ माल लेने आता,

वह प्रसन्न होकर जाता था। इसके अतिरिक्त वे अपना माल बेचते भी थे बहुत सस्ता। साथ ही माल भी बहुत बढ़िया रखते थे। यही कारण था कि थोड़े ही दिनों में उनकी दुकान अच्छी तरह जम गई। यों तो सभी लोग उनके यहाँ सौदा खरीदते ही थे किन्तु उनके दुकान की प्रतिष्ठा थोड़े ही दिनों में इतनी बढ़ी कि राजा के रनवास की दासियाँ भी उन्हींके यहाँ सामान खरीदने आने लगीं।

जब दासियाँ वस्तु खरीदने आतीं तो धनसेठ उस चित्र की पूजा करने लगते। उन्हें यह करते देख एक दिन एक दासी ने उनसे पूछा—“धनसेठ ! आप किसकी पूजा करते हैं ?” धनसेठ ने उत्तर दिया—“अपने देव की” दासी ने कहा—इस देव का नाम क्या है ? “धनसेठ ने उत्तर दिया—“श्रेणिक”। दासी ने आश्चर्य में भरकर पूछा—“मैंने सभी देवताओं के नाम सुने हैं, किन्तु उनमें श्रेणिक नाम के देव कोई नहीं। क्या ये कोई नये देव हैं।”

धनसेठ ने कहा—“हां ! तुम अन्तःपुर की स्त्रियों के लिये मगध देश के महाराजा - श्रेणिक सचमुच नये देव ही हैं।”

दासी ने कहा—“क्या महाराज श्रेणिक इतने अधिक सुन्दर हैं ?” ऐसा सुन्दर स्वरूप तो आज तक मैंने कभी देखा ही नहीं है।” यों कहकर वह चली गई।

उस दासी ने आकर, यह बात राजा चेतक की पुत्री सुज्येष्ठा से कही। सुज्येष्ठा की इच्छा उस चित्र को देखने को हुई। उसने वह चित्र मंगवाया, और उसे देखते ही वह राजा श्रेणिक पर मोहित होगई। उसने धनसेठ से कहाया कि—“आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे किसी भी तरह मेरा विवाह राजा श्रेणिक के साथ ह जाय।”

अभयकुमार ने शहर के बाहर से राजा के अन्तःपुर (जनान खाने) तक एक सुरंग खुदवाई। उस सुरंग के दरवाजे पर एक र

खड़ा किया और राजा श्रेणिक को भी वहाँ बुला लिया। राजा श्रेणिक उस रथ में बैठकर राजा चेतक की चेलणा नामक पुत्री को ले गये। सुजेष्ठा के बदले चेलणा कैसे आई, इसका वृत्तान्त “रानी चेलणा” नामक पुस्तिका में लिखा गया है।

(५)

एक बार राजा श्रेणिक के बाग में चोरी होगई। उस बाग के सबसे अच्छे आमों को कोई चुराकर तोड़ ले गया। राजा श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—“अभय ! इन आमों का चौर जल्दी पकड़ लाओ।” “अभय ने कहा—“जो आज्ञा।”

अभयकुमार ने बेश बदलकर घूमना शुरू किया। एकबार घूमते घूमते वे लोगों की एक मजलिस (मंडली) में पहुँचे। वहाँ इन्हें देखकर सबने आग्रह किया कि—“भाई, कोई कहानी कहो” लोगों के अधिक कहने सुनने पर अभय ने एक कहानी शुरू की—

एक कन्या थी। उसने एक माली को यह वचन दिया था कि मेरा विवाह चाहे जहाँ हो, परन्तु पहली रात्रि में मैं तुमसे आश्रय मुलाक़ात करूँगी। थोड़े दिनों के बाद उस कन्या का विवाह हुआ। विवाह के बाद कन्या ने अपने पति से, उस माली को मिलने जाने की आज्ञा माँगी। पति ने भी अपनी स्त्री को उसके लिये हुए वचन के पालन के लिये आज्ञा दे दी। स्त्री माली से मिलने को जा रही थी, कि रास्ते में उसके चोर मिले। उन्होंने स्त्री को लूटना चाहा। यह देखकर वह स्त्री बोली—“भाई, यदि तुम मुझे लूटना चाहो तो प्रसन्नता से लूटना, किन्तु पहले मुझे एक वचन पालन करने दो। विवाह की पहली रात में एक माली से मिलने का मैंने वायदा किया है, अतः पहले मुझे उससे मिल आने दो।” चोरों ने आपस में कहा—“ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा का पालन करने वाली कभी भूँठ नहीं बोल सकती। अच्छा इसे अभी तो जाने दो, लोटती बार लूटेंगे।”

वह स्त्री आगे चली। वहाँ उसे राक्षस मिला। उसने स्त्री से कहा—“मैं तुझे खाऊंगा।” स्त्री ने कहा—“यदि तुम मुझे खाना चाहो तो खा लेना, किन्तु पहले मुझे अपना वचन पालन करके आने दो। मैं लौटती बार अवश्य इधर आऊंगी।” राक्षस ने कहा—“बहुत अच्छा, किन्तु लौटती बार इधर आना जरूर।” फिर वह स्त्री माली के पास पहुँची। माली ने कहा—“तुझे धन्य है, ऐसी वचन को पालन करने वालो तो मैंने एक तुझको ही देखा है। जा, तेरी प्रतिज्ञा पूरी होगई।

स्त्री लौटकर राक्षस के पास आई। राक्षस ने सोचा—“वाह, यह तो बड़ी सत्यभाषिणी है। इस सत्यवादिनी को कौन खाये ? फिर वह स्त्री से बोला—“बहिन, मैं तुझे प्राणदान देता हूँ।” फिर मिले चोर, उन्होंने भी सोचा—“यह तो सचमुच अपने वायदे की पक्की है। सत्य बोलने वाली को कौन लूटे ?” उन्होंने स्त्री से कहा—“जा बहिन, तू जा, हम तुझे लूटना नहीं चाहते।” वह स्त्री अपने घर आई।

यह कथा कहकर, अभयकुमार ने उन लोगों से पूछा—कि बताओ, स्त्री के पति, चोर, राक्षस और माली में कौन सबसे श्रेष्ठ है ? किसी ने उत्तर दिया—माली, जिसने रात्रि के समय जवान स्त्री को अपने पास आने पर भी उसे अपनी बहन के समान माना। किसी ने कहा, उसका पति जिसने प्रतिज्ञा पालन के लिये इस तरह की आज्ञा दी। किसी ने कहा—राक्षस, जिसने जवान स्त्री को जीवित छोड़ दिया। इतने में एक आदमी बोल उठा, कि सबसे अच्छे वे चोर हैं जिन्होंने इतने गहने लूटने को मिल रहे थे, वे न लेकर उस स्त्री को यों ही छोड़ दिया।

अभयकुमार ने सोचा—अवश्य ही यह मनुष्य आम का चोर है—

उन्होंने उस मनुष्य को तत्क्षण गिरफ्तार करा दिया। अन्त में उस मनुष्य ने भी स्वीकार कर लिया, कि मैं ही आम चुराने वाला हूँ।

(६)

एकबार उज्जैन के राजा चंडप्रद्योत ने राजगृही पर बड़े जोर से चढ़ाई की। अभयकुमार ने विचारा, कि—“इसके साथ लड़ाई करने में कोई लाभ नहीं है। दोनों तरफ के लाखों मनुष्य मरेंगे, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जीत किसकी होगी? इसलिये यही उचित है, कि किसी तरकीब से काम लिया जावे।” उन्होंने घड़ों में सोने की मुहरें भरवाईं और उन्हें चुपके से शत्रु की छावनी में गढ़वादीं। उसके बाद, दूसरे दिन उन्होंने चंडप्रद्योत को एक पत्र लिखा—“पूज्य मौसाजी को मालूम हो कि मुझे आपका प्रेम एक क्षण भी नहीं भूलता। अभी आप पर एक बहुत बड़ी आफत आने वाली है, यही कारण है, कि उससे होशियार रहने के लिए मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे पिताजी ने बहुत सा धन देकर, आपकी सेना को अपनी तरफ फोड़ लिया है। यदि आप जांच करेंगे तो शेष सब बातें भी आपको मालूम हो जावेंगी।

चंडप्रद्योत ने अपनी छावनी में जांच की, तो वहाँ उन्हें सोने की मुहरों से भरे हुए घड़े मिले। यह देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि अभयकुमार का लिखना सत्य है, उन्होंने तत्क्षण अपनी सेना को वापिस लौटने का हुकम दे दिया।

(७)

चंडप्रद्योत को थोड़े दिनों के बाद मालूम हुआ, कि अभयकुमार ने मुझे धोखा दिया है उन्हें तो बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने अपनी सभा में पूछा—“क्या तुम लोगों में कोई ऐसा बहादुर है, जो अभयकुमार को जीवित पकड़ कर ला सके? यह सुनकर एक वेश्या

बोली—“हां महाराज ! मैं तैयार हूँ । अभयकुमार को जीवित ही पकड़ कर आपके सामने हाजिर कर दूँगी ।”

उस वेश्या ने अपने साथ दो दासियां लीं, और राजगुड़ी में आकर एक श्राविका बन कर रहने लगी । अहा, ऐसी धर्मिष्ठ बनकर रहने लगी, कि देखने वाले को उसकी धार्मिकता पर पूरा विश्वास हो जाता था । प्रतिदिन बड़े ठाठ-बाट से भगवान की पूजा करती, व्रत, उपवास करती और सारे दिन धर्मचर्या करती रहती ।

एकबार अभयकुमार मंदिर में पूजा करने गए । वहाँ उन्होंने इस श्राविका की भक्ति देखी तो वे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने पूछा— “बहिन तुम कौन हो, और कहाँ से आई हो ?” वह वेश्या बोली—“भाई मैं उज्जैन की रहने वाली हूँ, मेरा नाम भद्रा है । मेरे पति का देहान्त होगया है, लड़के थे वे भी मर गए, इसलिए दोनों बहुओं को लेकर मैं यात्रा करने निकली हूँ । किए हुये कर्मों को भोगे बिना कैसे छुट्टी मिल सकती है ?”

अभयकुमार ने कहा—“बहिन, आप आज मेरे यहां भोजन कीजिएगा ।”

भद्रा—“किन्तु आज तो मेरे उपवास है ।”

अभयकुमार—“तो कल पारणा मेरे यहां कीजियेगा ।”

भद्रा ने यह बात स्वीकार कर ली । पारणा इन्हीं के यहां किया । दूसरे दिन उसने अभयकुमार को निमन्त्रण दिया । अभयकुमार ने भी उसे स्वीकार कर लिया और उसके यहां भोजन करने गये । उस कपटी श्राविका ने उन्हें बड़े प्रेम से भोजन करवाया । किन्तु भोजन में उसने बेहोशी को दवा मिला दो था, अतः अभयकुमार बेहोश हो गये । उस समय उस घूर्तिनी ने रस्ती से कुमार को बाँध लिया और रथ में डाल कर उज्जैन चल दी ।

थोड़ी देर के बाद, जब अभयकुमार की बेहोशी दूर हो गई तो उन्होंने अपने आप को कैदों की दशा में पाया। वे उसी क्षण समझ गये, कि धर्म का ढोंग रचकर इस ठगिनो ने मुझे धोखा दिया है।

उस वैश्या ने उज्जैन पहुंच कर अभयकुमार को चंडप्रद्योत के सामने हाजिर किया। चंडप्रद्योत ने उन्हें कैद कर लिया।

(८)

राजा चंडप्रद्योत के यहाँ अनलगिरि नामक एक सुन्दर हाथी था। वह हाथी, एक बार पागल हो गया। चंडप्रद्योत ने अनेकों उपाय किये, किन्तु हाथी वश में नहीं आया। अब क्या करें? विचार करते-करते, राजा को अभयकुमार याद आये, अतः उन्हें बुलाकर पूछा—“अभयकुमार! अनलगिरी को वश में करने का कोई उपाय तो बताओ।”

अभयकुमार ने कहा—“आपके यहाँ, उदयन नामक एक राजा कैद है। उसकी गायन विद्या बड़ी विचित्र है। यदि आप उससे गायन करवावें तो उस गायन को सुनकर हाथी वश में आ जायगा। “राजा ने ऐसा ही किया, जिससे वह हाथी वश में होगया। इस कारण, राजा बहुत प्रसन्न हुए।” उन्होंने कहा—“अभयकुमार जेल से छूटने के अतिरिक्त तुम और जो भी चाहो, वह वरदान मांगो।” अभय ने कहा—“आपका यह वचन अभी आपके पास अमानत रखता हूँ। जब मांगने का मौका आवेगा, तब मांग लूँगा।”

अभय ने और भी ऐसे ही तीन बुद्धिमानों पूर्ण काम किए। प्रतिवार राजा चंडप्रद्योत ने उन्हें एक-एक वरदान देने का वचन दिया।

जब सब मिलाकर चार वचन हो गए। तब एक दिन अभयकुमार ने कहा—“महाराज, अब मैं अपने वरदान माँगता हूँ।

चंडप्रद्योत ने कहा— खुशी से मांगो । किन्तु जेल से छूटने के अनिश्चित ही वरदान मांगना । अभयकुमार—‘बहुत अच्छा मैं ऐसा ही वरदान माँगूँगा ।

यों कहकर, उन्होंने फिर कहा—महाराज ! आप और अपनी शिवादेवी , अनलगिरि हाथी पर बैठें । आप दोनों के बीच में मैं बैठूँ । फिर आपका रथ-रत्न गिना जाने वाला अग्निभीरु रथ मंगाओ और उसकी चिता बनवाओ । उस चिता में हम सब साथ जल कर मर जावें । बस, मैं इतना ही माँगता हूँ ।

अब, मांगने में और क्या बाकी रह गया था ? अभयकुमार की बात सुनकर, चंडप्रद्योत बड़े विचार में पड गये । अन्त में उन्होंने कहा—‘अभयकुमार, तुम आज से स्वतंत्र हो ।’ अभयकुमार आजाद हो गये, किन्तु उज्जैन से जाते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि—‘दिन दहाड़े जब राजा चन्दप्रद्योत को उज्जैन से पकड़ के ले आऊँ, तभी मैं सच्चा अभयकुमार हूँ ।’

(६)

अभयकुमार, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए एक व्यापारी बने और अपने साथ दो सुन्दर स्त्रियां लेकर उज्जैन आये । वहाँ आकर उन्होंने नगर की प्रधान सड़क पर एक मकान लिया ।

वे दोनों स्त्रियां शृङ्गार करके ठाठ-वाठ से घूमती रहतीं और लोगों के चित्त हरण करती थीं । एकबार राजा चंडप्रद्योत ने ही उन स्त्रियों को देखा, और मोहित होकर उन्होंने अपनी दासी के द्वारा उन स्त्रियों से कहलवाया—‘राजा चंडप्रद्योत तुमसे मिलना चाहते हैं, वे कब आवें ?’ उन स्त्रियों ने कहा—‘अरे बहिन ऐसी बात क्यों कहती हो ? तुम्हारे मुँह से ऐसा कहना शोभा नहीं देता ।’ दासी उस दिन वापिस चली गई ।

दूसरे दिन भी वह दासी आकर लौट गई और तीसरे दिन फिर आई। तब उन स्त्रियों ने कहा—“बहिन ! हमारे साथ हमारा एक भाई भी है। वह आज से सातवें दिन बाहर चला आवेगा। उस समय महाराज बड़ी प्रसन्नता से यहां पधार सकते हैं। दासी ने लौटकर चन्द्रप्रद्योत से यह बात कही। अतः वे सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगे। इधर अभयकुमार ने एक मनुष्य को पागल बनाया और प्रतिदिन उसे खाट में बांधकर वैद्य को दिखाने के लिये जाने लगे। मार्ग में वह नकली पागल चिल्लाता जाता कि—“मैं राजा चन्द्रप्रद्योत हूँ, मुझे ये लोग लिये जा रहे हैं, कोई छुड़ावो रे!” लोग उसकी यह बात सुनकर हँसते।

सातवें दिन चन्द्रप्रद्योत अभयकुमार के यहां आये। अभयकुमार ने उन्हें खाट पर बांध दिया और खाट उठवाकर बाहर की तरफ चले। चन्द्रप्रद्योत चिल्लाने लगे—“मैं राजा चन्द्रप्रद्योत हूँ, मुझे ये लोग लिये जा रहे हैं, कोई छुड़ावो रे! लोग यह चिल्लाहट सुनकर हँसने लगे, वे जानते थे कि यह बेचारा पागल है। अतः रोज ही इस तरह चिल्लाया करता है।

अभयकुमार, चन्द्रप्रद्योत को राजगृही में लाये। चन्द्रप्रद्योत को देखते ही राजा श्रेणिक बड़े क्रोधित हुए और उन्हें मारने दौड़े। किन्तु अभयकुमार ने उन्हें रोककर कहा—“पिताजी, ये अपने महमान हैं। इन पर आप क्वचित् भी क्रोध न कीजिये। मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये इन्हें यहां पकड़ लाया हूँ। अब इन्हें सम्मानपूर्वक यहाँ से विदा कर दीजिये।

(१०)

एक लकड़हारा था। वह अत्यन्त गरीब था। एकबार उसने मुनिजी का उपदेश सुना, अतः उसे वैराग्य हो गया। उसने दीक्षा ले ली, और अपने गुरु के साथ राजगृही आया।

वहां बहुत से लोग उनकी पहली दशा को जानते थे, अतः वे उनका मजाक करने लगे। और कहने लगे—‘कि इस दोस्त का जब कहीं ठिकाना न लगा तब साधू हो गया।’ लोग उसका और भी कई तरह से तिरस्कार करने लगे। अतः उन्होंने सोचा कि जहाँ अपमान होता हो वहाँ रहना उचित नहीं है।

उन्होंने अपना यह विचार अपने गुरुजी से बतलाया। गुरुजी ने कहा—“महानुभाव, तुम्हारा विचार ठीक है, हम लोग कल यहाँ से विहार कर देंगे।”

अभयकुमार, भगवान महावीर के बड़े भक्त थे। वे जिस प्रकार राज्य कार्य में चतुर थे, उसी प्रकार धर्म-ध्यान में भी बड़े कुशल थे। सदा श्री जिनेश्वर देव की पूजा करते और साधु-मुनिराजों को वंदन करते थे। उन्हें मुनि के इस कष्ट का पता लगा। अतः वे अपने गुरु के पास आये और उनसे प्रार्थना की, कि—हे भगवन्! कृपा करके कम से कम एक दिन तो आप और यहीं रुक जाइए, फिर चाहे सुख पूर्वक बिहार करें।” गुरुजी ने यह प्रार्थना स्वीकार करली।

दूसरे दिन अभयकुमार ने राजभंडार में से तीन मूल्यवान रत्न निकाले। और शहर के बीच चौक में आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने यह बात प्रकट करवाई कि ये तीन मूल्यवान रत्न हम देना चाहते हैं। यह सुनकर लोगों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ एकत्रित हो गए, और अभयकुमार से पूछने लगे—“हे मन्त्री महोदय, ये रत्न आप किसे देंगे?” अभयकुमार ने उत्तर दिया—“ये रत्न उस व्यक्ति को दिये जावेंगे जो तीन चीजें छोड़ दें, एक तो ठंडा पानी, दूसरा अग्नि और तीसरी स्त्री।”

मनुष्यों ने कहा—“ये तो बड़ी मुश्किल बातें हैं। हमेशा गर्म पानी

पीना किसी आवश्यक कार्य के लिए भी अग्नि न जलाना, और स्त्री के साथ का संबंध छोड़ देना, यह कार्य तो हम से नहीं हो सकते ।”

अभयकुमार ने कहा—“तब यह रत्न उन लकड़हारे मुनि के हो गये, जिन्होंने ये तीनों चीजें छोड़ दी हैं ।”

लोगों ने जान लिया—“कि लकड़हारे मुनि सचमुच पूरे त्यागी हैं, तभी अभयकुमार उनकी प्रशंसा करते हैं । हम लोगों ने नाहक ही उनको हूँसी की और उन्हें चिड़ाया ।” फिर अभयकुमार ने लोगों को शिक्षा दी, कि अब भविष्य में कोई भी उन मुनि से मजाक न करें और न उनका अपमान ही करें ।

(११)

एक बार, राजा श्रेणिक ने अपनी सभा में पूछा, कि—“सबसे अधिक मूल्यवान कौनसी चीज है ।” किसी ने कहा हीरा । कोई बोला मोती । तब अभयकुमार ने कहा—सबसे अधिक कीमती मांस है । अभयकुमार का उत्तर सुनकर सब लोग बोल उठे, यह “बात गलत है, मांस तो अधिक से अधिक सस्ती चीज है ।” अभयकुमार ने कहा—“अच्छा मौका आने पर बताऊंगा ।”

थोड़े दिनों के बाद, अभयकुमार एक सेठ के यहां गये और उनसे कहा—“सेठ जी राजा श्रेणिक, बीमार पड़ गये हैं । वैद्य लोगों ने बतलाया है कि ये और किसी भी तरह से नहीं बच सकते । इनकी एक ही दवा है मनुष्य के कलेजे का सवा तोला मांस । यदि यह दवा मिल जाय तो राजा अच्छे हो जायें, “अतः मैं आपके पास यही लेने को आया हूँ ।”

अभयकुमार की बात सुनकर सेठ घबरा उठे और बोले—“सरकार ! मुझे पाँच हजार रुपया ले लीजिये, और मुझे जीवित रहने दीजिये । आप किसी और से यह मांस ले लीजियेगा ।

इस तरह अभयकुमार सब सेठ साहूकारों तथा अमीर-उमरावों के यहाँ घूमे, किन्तु किसी ने भी अपने कलेजे का मांस न दिया और सबके सब रुपये पैसे देकर छूट गये । अब अभयकुमार को ढेर की ढेर सम्पत्ति प्राप्त होगई । दूसरे ही दिन उस धन को लेकर अभयकुमार राजसभा में आये और बोले—“महाराज ! इतने अधिक धन के बदले में सवा तोला मांस भी नहीं मिलता ।” यह सुनकर सब दरबारी लोग लज्जित होगये । तब अभयकुमार ने फिर कहा—“मांस सस्ता अवश्य है, किन्तु वह केवल दूसरों का अपने शरीर का मांस तो अधिक से अधिक मूल्यांकन माना जाता है ।

अभयकुमार की बुद्धिमानी के, ऐसे-ऐसे अनेकों उदाहरण हैं । यही कारण है कि लोग भी यह इच्छा करते हैं कि हममें भी अभयकुमारकी-सी बुद्धि हो ।

(१२)

महाराज श्रेणिक ने, अभयकुमार को राजगद्दी के लायक देखकर, आग्रह किया कि—“हे पुत्र ! तुम इस राज्य का उपभोग करो । मेरी इच्छा भगवान महावीर से दीक्षा लेने की है ।” किन्तु अभयकुमार ने कहा—“पिताजी ! मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है, मैं अब अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ । प्रभु महावीर से दीक्षा लेने की मेरी भी बड़ी इच्छा है । आप इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये ।”

राजा श्रेणिक ने, राज्य ले लेने के लिये बड़ा आग्रह किया, किन्तु अभयकुमार अपने निश्चय पर दृढ़ रहे । अन्त में एक प्रसंग विशेष से प्रसन्न होकर श्रेणिक ने आज्ञा दे दी ।

बुद्धि के भण्डार अभयकुमार ने साधु होकर पवित्र जीवन बिताना प्रारंभ किया, और संयम तथा तप से आत्म-शुद्धि करने लगे । बहुत दिनों तक ऐसा जीवन व्यतीत कर, उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की ।

१० अन्तिम केवली जम्बूस्वामी

(१)

सोलह वर्ष का सुन्दर कुमार है। सोने के हिंडोलेदार पलंग पर बैठा है। हाथ में हीरे से जड़ी हुई रेशमी रस्सी है, जिसके द्वारा वह कड़ाक-कड़ाक भूले ले रहा है। इस कुमार का नाम है-जम्बू।

क्रोडाधिपति ऋषभदत्त का वह पुत्र है। उनकी माता का नाम है धारिणी। सेठ के यही एक पुत्र है, अतः लाड़-प्यार में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखी गई।

शहर की अच्छी से अच्छी आठ कन्याओं के साथ थोड़े ही बिन पहले इस कुमार की सगाई हो चुकी है।

एक दिन वन के रक्षक ने आकर बधाई देते हुए कहा,—कि 'सेठजी ! वैभारगिरि पर श्री सुधर्मास्वामी पधारे हैं।

समता के सरोवर तथा ज्ञान के समुद्र गुरुराज के पधारने से किसे प्रसन्नता नहीं होती ? जम्बूकुमार का हृदय हर्ष से छछलने लगा। उसने हिंडोला बन्द किया और गुरु के पधारने की खुश-खबरी लाने के इनाम में अपने गले से मोती की माला निकाल कर वनपालक को दे दी। वनपाल प्रसन्न होकर चला गया।

जम्बूकुमार ने सारथी से कहा—'सारथि ! रथ जल्दी तैयार करो, वैभारगिरि पर गुरुराज पधारे हैं, मैं उनके दर्शन करने को जाऊंगा।'

सुन्दर सामिग्रियों से सुशोभित रथ तैयार किया गया। उसमें बैठकर जम्बूकुमार वैभारगिरि को चले। वैभारगिरि राजगृही के बिलकुल नजदीक थी, अतः वे थोड़े ही समय में वहां पहुंच गये।

सुधर्मास्वामी भगवान महावीर के गणधर (संघ नायक) थे। वे उस समय के सारे जैन-संघ के नेता थे। फिर भला उनके उपदेशों में अमृत की वर्षा के अतिरिक्त और क्या हो सकता था ?

जम्बूकुमार उन्हें वंदन करके उपदेश सुनने लगे। वे ज्यों-ज्यों उपदेश सुनते गये, त्यों-त्यों उनका मन संसार से विरक्त होता गया। उपदेश पूरा होते-होते जम्बूकुमार का हृदय वैराग्य से भर गया।

वे हाथ जोड़कर बोले, कि—“प्रभु ! मुझे दीक्षा लेनी है अतः मैं माता-पिता से आज्ञा लेकर आऊँ तब तक आप यहीं विराजने की कृपा करें। सुधर्मास्वामी ने यह स्वीकार कर लिया।

रथ में बैठकर जम्बूकुमार पीछे लौटे। नगर के दरवाजे पर पहुँचकर देखते हैं, कि सेना की भीड़ दरवाजे से निकल रही है। हाथी, घोड़े, पैदल की कोई सीमा ही नहीं थी। ऐसी भीड़ को चीर कर भीतर कैसे जाया जा सकता ? और जब तक सेना पार न हो जाय, तब तक वहाँ रुक भी कैसे सकते थे ? अतः वे दूसरे दरवाजे की तरफ चले।

जब वे दूसरे दरवाजे के नजदीक पहुँचे, तब एक जबरदस्त लोहे का गोला धम्म से उसके पास आ गिरा। यह गोला उन सिपाहियों द्वारा चलाया हुआ था, जो लड़ाई की शिक्षा ले रहे थे। यह देखकर जम्बूकुमार विचारने लगे, कि अहो ! यह लोहे का गोला यदि मेरे सिर पर गिरता, तो मेरी क्या दशा होती ? मैं निश्चय ही ऐसे व्रतहीन जीवन की दशा में ही मर जाता, अतः चलूँ, अभी गुरुजी के समीप जाकर ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ले आऊँ।

जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी के पास आये और हाथ जोड़कर बोले—“भगवान् ! मुझे जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की प्रतिज्ञा करवा दीजिये।” सुधर्मास्वामी ने व्रत प्रतिज्ञा करवा दिया।

ब्रह्मचर्य व्रत लेकर मन में हर्षित होते हुए जम्बूकुमार अपने घर धाये और माता-पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी ।

मां-बाप बोले—“बेटा ! दीक्षा लेना अत्यन्त कठिन कार्य है । पंचमहाव्रत का पालन तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है । तू तो अब भी बालराजा कहा जाता है । तुझसे साधु के कठिन व्रत कैसे पल सकेंगे ? फिर तू अकेला ही तो हमारे प्यारा लड़का है, तेरे बिना हमें एक क्षण भी अच्छा नहीं मालूम होता ।”

जम्बूकुमार बोले—“पूज्य माता-पिताजी ! संयम अत्यन्त कठिन है, यह आपका कहना ठीक है किन्तु उसकी कठिनता से तो केवल कायर लोग ही डरते हैं । मैं आपकी कोख से पैदा हुआ हूँ, व्रत लेकर, प्राण जाने पर भी उन्हें नहीं तोड़ूँगा । मुझ पर आप लोगों का अपार प्रेम है, अतः मेरे बिना आपको निश्चय ही अच्छा न मालूम होगा, किन्तु ऐसे वियोग का दुख सहन किये बिना मुक्ति भी तो नहीं मिल सकती ? इसलिये आप लोग प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये ।”

मां-बाप ने कहा—“पुत्र ! यदि तुम्हें संयम लेने की बहुत ही इच्छा हो तो हमारी एक बात तुम्हें माननी चाहिये । हम तुम्हारे माता-पिता हैं, अतः हमारे दिए हुए वचन को पालन करने के लिए, हमने जो कन्यायें तुम्हारे लिए स्वीकार कर ली हैं, उनके साथ पहले अपना विवाह करलो, फिर तुम्हारी इच्छा हो तो सुखपूर्वक दीक्षा ले लेना ।”

जम्बूकुमार बोले—“आपकी यह आज्ञा मैं माथे पर चढ़ाता हूँ । किन्तु फिर मुझे दीक्षा लेने से आप रोकियेगा नहीं ।”

मां-बाप ने कहा—“बहुत अच्छा ।”

ऋषभदत्त ने आठों कन्याओं के पिताओं को बुलवाया और

उनसे कहा, कि—“हमारा जम्बूकुमार विवाह के तत्क्षण बाद दीक्षा लेगा। वह केवल हमारे आग्रह से अपना विवाह कर रहा है। अतः आपको जो कुछ भी सोचना हो, वह सोच लीजिये। पीछे से हमें कुछ मत कहना।”

यह सुनकर वे विचार में पड़ गये। अपने पिताओं को विचार में पड़े देख, उन कन्याओं ने कहा—पिताजी आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हमतो हृदय से जम्बूकुमार को वर चुकी हैं। अब जैसा वे करेंगे, वैसा ही हम भी करेगी।”

कन्याओं ने अपना यह निश्चय बतला दिया। अतः सात दिन आगे की तिथि विवाह के लिए तय कर दी गई।

जम्बूकुमार के विवाह में किस बात की कमी हो सकती थी? बड़ा भारी मंडप बांधा गया, और उसे भांति-भांति के चित्रों तथा तोरण आदि से सजाया गया। सातवें दिन, जम्बूकुमार का वहां बड़ी घूम-धाम और से आठों कन्याओं के साथ विवाह हो गया। राजगृही नगरी में ऐसी घूम धाम और ठाट बाट से अन्य विवाह बहुत ही कम हुए होंगे।

विवाह की पहली रात्रि में जम्बूकुमार अपनी स्त्रियों सहित रंगशाला (सोने के कमरे) में गये।

रंगशाला की सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती। अच्छे-अच्छे मनुष्यों का चित्र उसे देखकर चलायमान हो जाय। वहां की मोज सोख की सामग्री तथा वहाँ के चित्र आदि ऐसे थे कि जिन्हें देखकर मनुष्य की बिषयेच्छा जागृत हो उठे।

युवा अवस्था, रात्रि का समय, एकान्त—स्थान और अपनी विवाहिता जवान-स्त्रियां पास होने पर भी जम्बूकुमार का चित्त नहीं डिगा।

(३)

राजगृही—नगरी से थोड़ी दूर पर एक बरगद का झाड़ था, जिसकी छाया अत्यन्त सघन थी इस बरगद के झाड़ के नीचे हृद दर्जे की बदमासों चोर आदि का संगठन होता था। शाम होते ही उसके नीचे एक के बाद एक मनुष्य आने लगे। इन सबने, अपने मुँह पर नकाब पहिन रखे थे और अपने शरीर पर खाकी रंग के कपड़े ओढ़ रखे थे।

इन सब में एक विशालकाय जवान था, जिसके नेत्र बड़े-बड़े तथा लाल एवं चेहरा मुँह डरावना था। सब मनुष्यों के इकट्ठे हो जाने पर वह बोला—“दोस्तो ! आजतक हम लोगों ने बहुत सी चोरियाँ की हैं। किन्तु जितनी चाहिये उतनी सफलता कभी नहीं मिली। आज मैं एक जबरदस्त मौका देख आया हूँ।”

राजगृही नगरी के ऋषभदत्त सेठ के पुत्र जम्बूकुमार के विवाह में आये हुए धन का ढेर लगा है यदि हम लोग अच्छी तरह हाथ मारेंगे तो जब तक जीयेंगे, तब तक चोरी करनी ही न पड़ेगी। इसलिये आज अच्छी तरह तैयार रहना।”

सब बोल उठे—“हम तैयार हैं। हम तैयार हैं। आपकी जैसी आज्ञा होगी। वैसे करने को हम सदैव तैयार हैं।

इस बड़े भारी डीलडोल वाले मनुष्य का नाम था—प्रभव। असल में वह एक राजा का पुत्र था। किन्तु बाप ने छोटे भाई को गद्दी दी, अतः वह नाराज होकर घर से निकल गया और चोरी-डाका आदि का पेशा करने लगा। वह इतना जबर्दस्त हो गया, कि उसका नाम सुनते ही मनुष्यों के होश उड़ जाते थे। वह अपने ५०० साथियों को लेकर तैयार हुआ। और अन्धेरा होते ही शहर में दाखिल हो गया। चलते-चलते वहाँ जम्बूकुमार के मकान के

सामने आया। प्रभव के पास दो विद्यायें थीं। एक तो नींद डाल देने की, और दूसरी चाहे जैसे ताले खोल डालने की।

वहाँ पहुँचते ही, उसने अपनी विद्याएँ अजमाईं तत्क्षण ही सब नींद में पड़ गये और तिजोरियां के ताले टपाटप खुल गये। चोर लोगों ने, उनमें से इच्छानुसार धन लेकर गठूरियां बांधलीं।

ज्योंही वे धन की गठूरियां लेकर बाहर निकलने लगे, त्योंही उन सबके एकाएक पैर रुक गये। प्रभव चारों तरफ देखने लगा। यह क्या? वहाँ उसने जम्बूकुमार को जागते देखा। यह देखकर वह बड़ा विचार में पड़ गया। और सोचने लगा, कि—“इसे नींद क्यों नहीं आई।”

जम्बूकुमार का मन बड़ा मजबूत था। इसी कारण उन पर प्रभव की विद्या का कोई, प्रभाव न हुआ। जिस समय चोर लोग चोरी कर रहे थे, तब वे विचार कर रहे थे—“मुझे धन पर कुछ भी मोह नहीं है, किन्तु यदि आज बड़ी चोरी होगई और कल ही मैं दीक्षा लूंगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे? यही न कि सब धन चोरी चला गया, अतः दीक्षा ले ली।” इसलिए चोर लोगों को ज्यों का त्यों तो कदापि न जाने देना चाहिए। “यह सोचकर उन्होंने पवित्र नये मंत्र का जप किया, जिसके प्रभाव से सब चोर जहाँ के तहाँ खड़े रह गये।

अब तो प्रभव घबराया और हाथ जोड़कर बोला—“श्रेष्ठी कुमार जी, मुझे प्राणदान दीजिए। यदि आप हमें यहाँ से पकड़कर राजा के दरवार में पेश करेंगे, तो कौणिक राजा हमें जान से मरवा डालेंगे। लीजिए मैं आपको अपनी दो विद्यायें देता हूँ, इनके बदले में आप मुझे प्राणदान दीजिए। और अपनी स्तंभिनी विद्या (जहाँ का तहाँ रोक देने वाली विद्या) भी दीजिए।

जम्बूकुमार ने कहा—“अरे भाई, घबराओ मत, तुम्हें मैं धनदान देता हूँ, मेरे पास विद्या कुछ भी नहीं है केवल एक धर्म विद्या है, वह मैं तुम्हें देता हूँ, यों कह कर उन्होंने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। उसे ऐसी बातें सुनने का अपने जीवन में यह पहला मौका मिला था।

प्रभव ने धन की गठरियां उतरवा-डालीं। नींद की विद्या वापिस पीचली। और हाथ जोड़कर बोला कि जम्बूकुमार आपको धन्यवाद ! कि धन के ढेर और अप्सराओं के समान सुन्दर स्त्रियाँ छोड़कर प्रीक्षा ले रहे हैं। मैं तो महापापी हूँ। और धन प्राप्त करने के लिए नीच से नीच रोजगार करता हूँ। किन्तु आज मुझे अपनी बुरी बातों का विचार हो आया है। सवेरे मैं भी सब चोरों सहित आपके साथ प्रीक्षा लूंगा।

इस समय सब स्त्रियां जाग उठीं थीं। वे जम्बूकुमार को प्रीक्षा न लेने के लिए समझाने लगीं।

एक स्त्री ने कहा—“स्वामीनाथ, आप दीक्षा लेने को तैयार हो गए हैं, किन्तु पीछे से “बक” नामक किसान की तरह पछताओगे।”

प्रभव ने पूछा—“बक किसान की क्या कथा है? वह जरा मुझे बतलाइए तो सही।”

वह स्त्री कहने लगी, कि—“मारवाड़ में एक किसान ने अनाज की खेती की, जिसमें अनाज खूब पैदा हुआ। फिर एकबार वह अपनी बड़की के यहां गया। वहाँ उसे माल पुए खाने को मिले। माल पुए उसे बड़े स्वादिष्ट मालूम हुए। अतः उसने पूछा कि यह चीज किस तरह बनती है? उत्तर मिला, कि गेहूँ का आटा और गुड़ हो तो यह चीज बन सकती है।

उसने घर आकर खेत में पैदा हुआ सब अनाज उखाड़ डाला। और गेहूँ तथा गन्ना बो दिया, किन्तु पानी के बिना सब सूख

गये। भला मारवाड़ में इतना पानी कहां मिल सकता, कि गेहूँ और गन्ना पैदा किया जा सके। अब तो बेचारा खूब पछताया। इसी तरह मिली हुई चीज खोकर, न मिलने योग्य चीज के लिए जो मेहनत करता है उसे अन्त में पछताने का मौका आता है।

यह सुनकर जम्बूकुमार ने जवाब दिया—कि मैं उस पर्वत के बन्दर की तरह नहीं हूँ, कि भूल करके बन्धन में पड़ जाऊँ।”

प्रभव ने पूछा—कि “पर्वत के बन्दर की क्या कथा है?”

जम्बूकुमार कहने लगे—कि “एक पर्वत पर एक बूढ़ा बन्दर रहता था। वह बहुतसी बदरियों के साथ रहता और आनन्द करता। किन्तु एक दिन जवान बन्दर आया और उस बूढ़े बन्दर से उसकी लड़ाई होगई। इस लड़ाई में बूढ़ा बन्दर हार गया और भागा।

जंगल में घूमते-घूमते उसे बड़ी प्यास लगी। उसी समय उसने शीलारस (एक प्रकार का चिकना पदार्थ) झरते देखा। वह समझा, कि यह पानी है। अतः उसने उसमें मुँह डाला, किन्तु वह तो उस रस में बिलकुल ही चिपक गया। अब क्या करे। अपना मुँह छुड़ाने के लिए उसने अपने दोनों हाथ उस रस पर दबाये। और मुँह को खींचने लगा। इस प्रयत्न से, उसका मुँह उखड़ना तो दूर रहा, उल्टे उसके हाथ भी उसी पर चिपक गये। इसी तरह उसने अपने पैर उस पर रखे और वे भी चिपक गये। इस कारण, वह बेचारा दुःख भोगता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगया। इसी तरह सारे सुख वैभव यानी ऐश आराम शीलारस की तरह हैं अतः इनसे चिपकने वाला अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

यह बात सुनकर एक स्त्री ने कहा—“स्वामीनाथ, आप अपना ग्रहण किया हुआ विचार दीक्षा लेने का छोड़ते तो नहीं हैं, किन्तु अन्त में गधे की पूँछ पकड़ने वाले की तरह आपको दुखी होना पड़ेगा।”

प्रभव ने कहा कि—“फिर वह गधे की पूँछ पकड़ने वाले की क्या कथा है ?”

वह स्त्री बोली कि—“एक गाँव में ब्राह्मण का एक लड़का था। वह बड़ा ही मूर्ख था। उससे उसकी माँ ने एकबार कहा, कि ग्रहण की हुई बात को फिर नहीं छोड़ना। यह पंडित का लक्षण है। उस मूर्ख ने अपनी माता का यह कथन अपने मन में धारण कर लिया। एक दिन किसी कुंभार का गधा घर से भागा। कुंभार भी उसके पीछे पीछे दौड़ा। आगे चलकर कुंभार ने उस ब्राह्मण के लड़के को आवाज दी, कि अरे भाई! जरा उस गधा को पकड़ना। उस मूर्ख ने गधे की पूँछ पकड़ ली। गधा अपने पिछले परों से जोर जोर से लात मारने लगा। किन्तु फिर भी उस लड़के ने तुम न छोड़ी। यह देखकर लोग कहने लगे, कि अरे मूर्ख गधे की पूँछ क्यों पकड़ रखी है? उसे छोड़ता क्यों नहीं? यह सुनकर लड़के ने उत्तर दिया, मेरी माँ ने मुझे ऐसी ही शिक्षा दी है कि पकड़ी हुई चीज को फिर नहीं छोड़नी चाहिए। इसलिए उस मूर्ख ने खूब दुःख उठाया।

जम्बूकुमार यह सुनकर बोले कि ठीक है। तुम सब उस गधे की तरह हो। तुम्हें पकड़ रखना, यह गधे की पूँछ पकड़ रखने के समान ही भूल है। किन्तु, तुम कुलवती होकर ऐसी बातें करती हो यह ठीक नहीं है।

इस तरह स्त्रियों के साथ जम्बूकुमार का बड़ा वाद-विवाद हुआ, जिसमें जम्बूकुमार की ही विजय हुई। अन्त में सब स्त्रियाँ भी उनके साथ ही दीक्षा लेने को तैयार हो गईं।

सवेरा होते ही, जम्बूकुमार ने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। माँ-बाप ने वचन दे रखा था, अतः उन्होंने बिना और कुछ कहे आज्ञा दे दी और स्वयं भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये।

जम्बूकुमार की स्त्रियाँ, अपने अपने माता-पिता के यहाँ गईं, और दीक्षा लेने के लिये उनसे आज्ञा माँगी। उनके माता-पिताओं ने भी उन्हें आज्ञा दे दी। और वे स्वयं भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये।

राजा कोणिक को जब यह बात मालूम हुई, कि जम्बूकुमार दीक्षा लेते हैं, तो उन्होंने भी जम्बूकुमार को बहुत समझाया। किन्तु जम्बूकुमार अपने निश्चय पर से जरा भी न डिगे।

प्रभव भी, अपने साथियों सहित दीक्षा लेने को तैयार होगया।

दीक्षा का भारी उत्सव मनाया गया। उस उत्सव में ५२७ मनुष्यों ने साथ दीक्षा ली। ऐसे-बड़े महोत्सव पृथ्वी पर बहुत ही थोड़े हुये होंगे।

जम्बूकुमार १६ वर्ष की अवस्था में सुधर्मास्वामी के शिष्य हुये। और संयम तथा तप से अपने मन, वचन तथा काया को पवित्र करने लगे। गुरु के पास उन्होंने शास्त्रों का अभ्यास किया, और थोड़े ही समय में तो वे सारे शास्त्रों में पारंगत हो गये।

सुधर्मास्वामी के निर्वाण पधारने पर वे उनके गणनायक पद पर विराजे। इस तरह जम्बूस्वामी सारे जैनसंघ के अगुवा हो गये।

जम्बूस्वामी को अपना जीवन पूर्ण पवित्र बना लेने पर केवल-ज्ञान हो गया। और कितने ही वर्षों के पश्चात् वे निर्वाण को प्राप्त हो गये। कहा जाता है कि जम्बूस्वामी इस पंचम काल में अन्तिम केवलज्ञानी हुए हैं उनके बाद फिर कोई केवलज्ञानी नहीं हुआ।

धन्य है, अपार रिद्ध-सिद्ध तथा भोग विलासों को लात मारकर सच्चे सन्त होने वाले जम्बूस्वामी को।

११ महान काम विजेता श्री स्थूलीमद्र

एक सुन्दर महल है, उसके चारों ओर सुन्दर उद्यान है। महल अद्भुत कला का नमना है, उद्यान सौगभ और सौन्दर्य की खान है। महल की चित्रशाला में कलापूर्ण मनमोहक चित्र चित्रित हैं, जिन्हें देखते ही पंडित भी चित्रवत् अवाक् रह जाते हैं। उद्यान में सुन्दर सुरभि पुष्पों की बहार है। वायुमण्डल सुगन्धी से भरपूर है, जो साधु सन्तों के हृदयों को भी बलात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

महल में मधुर मनोहर अनुपम संगीत होता रहता है। पथिक बर-बस खड़े रह जाते हैं। उद्यान षक्षियों के मधुर क्लेश से संगीत मय हो रहा है। फुवारी की जलध्वनि ताल दे रही है, यह सुन्दर छटा प्रकृति प्रेमियों को मुग्ध किये बिना नहीं रह सकती। महल में नाच रंग होते हैं, और उसे देखने के लिये शहर के गण्यमाण्य व्यक्ति आते और मुग्ध होकर गर्दन हिलाते हैं। उद्यान में की सुरभि घोर समीर के इशारों पर फुलवाड़ी की कोमल कलियां नृत्य करती हैं, पक्षी समूह उनका आनन्द लूटते हैं। महल में और महल के बाहर, हर जगह आकर्षण है, मनोहरता है, आनन्द है, उल्लास है और मस्ती के सामान है। यह महल उस नगर की प्रसिद्ध चैश्या कोशा का था। उसका रूप लावण्य अद्वितीय और अनुपम था। उसका संगीत बेजोड़ था और नृत्य में तो उसने संसार भर में ख्याति प्राप्त कर रखी थी।

अच्छे-अच्छे सेठ साहूकारों के पुत्र और राजकुमार उसके यहां आते थे। कोई संगीतकला की शिक्षा के लिए, कोई बुद्धिमानी प्राप्त

करने के लिये, कोई व्यवहार कुशलता में निपुण होने के लिये। उस जमाने में धनिक पुरुष वैश्यालयों को भी शिक्षा का द्वार समझते थे।

एक बार कोशा पूरे ठाठ के साथ महल की अटारी पर बैठी थी। भीतर तरुण वैश्यायें संगीत की मधुर ध्वनि में से वायुमंडल में आनन्द और उल्लास का रंग भर रही थीं उधर रास्ता चलने वाले पुरुष बरबस वहाँ टिठक जाते थे। उधर नजर चठाकर देखते ही मंत्र-मुग्ध से होकर खड़े ही रह जाते थे।

इसी समय एक १८ वर्ष का रूपवान कुमार उस महल के नीचे आकर ठिठक गया। उसका पोशाक, उसका ठाठ, मुखमुद्रा सभी असाधारण थे। कोशा ने भी ऐसा सुन्दर मोहक रूप कभी न देखा था। उसने एक दासी को हुक्म दिया—जाओ उस कुमार को मान पूर्वक बुला लाओ। दासी ने नीचे जाकर प्रणाम किया और कोकिल कंठ विनिन्दित कोमल स्वर से कहा—आपको बाई साहब बुला रही हैं, ऊपर पधारिये।

युवक ने उत्तर दिया—बाई बुलाती हैं, तो उन्हें खुद आना चाहिये। दासी के साथ में नहीं जा सकता।

दासी ने ऊपर आकर कोशा से कहा और कोशा स्वयं नीचे आकर युवक को मानपूर्वक ऊपर लिवा ले गईं। जब उसे मालूम हुआ कि वह युवक पाटलीपुत्र में सिक्का जमाने वाले शकडाल मन्त्री का पुत्र स्थूलीभद्र है तो उसके हर्ष का पार न रहा। स्थूलीभद्र शिक्षा प्राप्त करने के लिये वहाँ आया था। उसे पिता ने खुले हाथ खर्च करने की आज्ञा दी थी।

संसार के अनुभव की शिक्षा प्राप्त करते करते स्थूलीभद्र प्रेम पाठ में भी निपुण हो गया और कोशा के प्रेम पास में बँध गया। धन की तो कमी थी ही नहीं। मन चाहे जितना रुपया घर से मँगाता और खुले हाथ खर्च करता था।

कोशा भी उसे हृदय से प्यार करने लगी। उसने और सबसे सम्बन्ध छोड़ दिया। स्थूलीभद्र कोशा का, और कोशा स्थूलीभद्र की हो गई। स्थूलीभद्र भोग विलास में ऐसा डूबा कि १२ वर्ष जाते देर न लगी।

स्थूलीभद्र के पिता अत्यन्त बुद्धिमान थे। पाटलीपुत्र के राजा नन्द के तो वे दाहिने हाथ से थे। उनके परामर्श के बिना राज्य का कोई भी काम न होता था। स्थूलीभद्र के एक छोटा भाई था, जिसका नाम श्रेयक था। सात बहिनें थीं, जिनके नाम—यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेणा, वेणी और रेणा थे। श्रेयक अपने पिता के समान ही राजकाज में दिलचस्पी रखता था, अतएव राजा नन्द ने उसे अपना अंग रक्षक नियुक्त कर दिया था।

(२)

वररूचि नामक एक ब्राह्मण को राजा नन्द के यहां से नवीन श्लोक बनाकर सुनाने के लिये सदैव १०८ सोने की मुहरें मिला करती थीं। परन्तु शकडाल मन्त्री ने अपनी युक्ति से उन मुहरों का दिया जाना बन्द करा दिया था। मंत्रीके कन्याओं की स्मरण शक्ति भी बड़ी अद्भुत थी। उक्त विद्वान ब्राह्मण के श्लोकों को केवल एकबार सुनकर ही वे ज्यों का त्यों सुना देती थीं, और उस बेचारे के नवीन बनाये हुए श्लोक भी पुराने सिद्ध हो जाते थे। ब्राह्मण को अपना परिश्रम व्यर्थ होने से महान दुःख हुआ। वह मन ही मन कहने लगा— इस मन्त्री से किसी न किसी प्रकार बदला अवश्य लेना चाहिये। यह मेरी सारी मेहनत को मिट्टी में मिला देता है। मैंने पानी में यन्त्र लगाकर श्लोक पाठ के साथ ही साथ उससे मुहरें बाहर निकालने की युक्ति की थी। जिससे जनता यह समझ गई थी कि मेरे श्लोकों के प्रभाव से ही श्री गंगाजी प्रसन्न होकर मुहरों की थैली मुझे प्रदान करती हैं। परन्तु उस मन्त्री ने मेरा भण्डाफोड़ कर दिया।

इस कम्बख्त को क्या मिल गया ? अब तो जनता भो मुझे कपटी समझने लगी । और राजा भी धूर्त समझते हैं । इससे बदला न लूं तो मैं भी ब्राह्मण कैसा ? इसी प्रकार विचार करते करते उसे एक उपाय सूझा । उसे मालूम हुआ कि श्रेयक का विवाह निकट है और इस शुभ अवसर पर राजा को भेंट देने के लिये शकडाल हथियार तैयार करा रहा है । उसने इस मौके से लाभ उठाने का निश्चय किया और गलियों में मारे मारे फिरने वाले बच्चों को मिठाई देकर उनसे कहा कि तुम इस दोहे को गाते फिरो । वे बच्चे गली गली पर यों गाते फिरने लगे—

किसे खबर शकडाल क्या, करता छुप छुप काज ।

मारेगा नंदराय, को श्रेयक लेगा राज ।

राजा नन्द के कान में भी इस दोहे की भनक पड़ी । उसने सोचा जो बात गलीगली में फैल रही है उसमें कुछ सचाई अवश्य होनी चाहिये । यह सोचकर उसने शकडाल को मार देने का निश्चय किया । उधर शकडाल को पता चला कि राजा उससे क्रोधित है और उसके परिवार को मार डालने की फिर में हैं । उसने श्रेयक से कहा—श्रेयक, कल जब मैं राजदरबार में जाकर राजा के सामने शिर झुकाऊँ तो तुम मेरी गर्दन काट देना । श्रेयक ने कहा—पिता जी आप क्या कह रहे हैं ? ऐसा तो कोई चांडाल भी न करेगा । शकडाल ने कहा—श्रेयक, जरा धीरज से काम लो । राजा को हमारा ऊपर सन्देह हो गया है और वह क्रोध से वशीभूत होकर हमारा समस्त कुटुम्ब को मटियामेट कर देगा । मेरा क्या है, मैं तो कब्र पर लटककर बैठा हूँ, कल नहीं तो चार दिन बाद इस संसार से बिदलूँगा परन्तु तुम इस प्रकार राजा को स्वामिभक्ति का विश्वास दिल दोगे तो हमारे कुटुम्ब को आँच न आयेगी । मैं अपने गले में घात विष रखूँगा । जिससे मुझे कोई कष्ट न होगा ।

श्रेयक की समझ में तो बात आगई परन्तु ऐसा करने के लिये उसका हृदय तैयार नहीं होता था। अन्त को पिता के बहुत आग्रह करने पर उसने लाचार होकर दुखी हृदय से यह कार्य करना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन जब शकडाल ने जाकर राजा को प्रणाम किया तो राजा ने मुँह फेर लिया। उसी समय श्रेयक ने म्यान से तलवार निकाली और शकडाल का शिर भूमि पर लोटने लगा। राजा यह देखकर अवाक् रह गया। उसने श्रेयक से ऐसा करने का कारण पूछा—श्रेयक ने उत्तर दिया—महाराज ! ये राजद्रोही थे। राजद्रोही को यही सजा है। मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। कर्तव्य के भागे पिता पुत्र या सगे सम्बन्धियों से मोह नहीं किया जाता।

राजा श्रेयक की सच्ची स्वामी-भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और शकडाल की उत्तर क्रिया हो जाने के बाद श्रेयक को उसके पिता का स्थान देने के लिये कहा—श्रेयक ने उत्तर दिया। महाराज, आपकी इस कृपा के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, परन्तु इस स्थान के योग्य मेरे बड़े भाई स्थूलीभद्र ही हैं।

राजा ने कहा—अच्छा, तुम्हारे कोई बड़ा भाई भी है ? परन्तु मैं तो उसे कभी नहीं देखा। श्रेयक ने उत्तर दिया महाराज ! पिताजी की आज्ञा से कोशा के यहाँ रहते उन्हें १२ वर्ष बीत गए। राजा ने स्थूलीभद्र को बुलाने लिए संदेश भेजा।

(३)

स्थूलीभद्र रंगमहल में बैठा था। कोशा अपने अलौकिक नृत्य उसे रिझा रही थी। अन्य वेश्यायें भी अपनी अपनी मोहक कलाओं से वानगी दिखला रही थीं। इसी समय राजा के सिपाही पहुँचे। उन्होंने स्थूलीभद्र को प्रणाम करके कहा—आपको महाराज ने याद

किया है। स्थूलीभद्र मन ही मन सोचने लगा। ऐसा क्या काम होगा कि जिसमें महाराज को मेरी आवश्यकता प्रतीत हुई।

पालकी पर सवार होकर स्थूलीभद्र राजदरबार में पहुँचा, वहाँ मालूम हुआ कि—उसके पिता परलोक सिंघार चुके हैं। इससे उसे अत्यन्त दुःख हुआ, वह मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा। ओहो, मैं कितना पामर हूँ, जो भोग-विलास में डूबा रहा और अन्त समय में भी पिता के दशन न कर सका।

राजा ने स्थूलीभद्र से कहा—आप अपने पिता के स्थान पर मन्त्री पद स्वीकार कीजिये—स्थूलीभद्र ने उत्तर दिया—महाराज ! मेरा हृदय इस समय शोक से विह्वल है। शान्त हृदय से विचार करके उत्तर दूँगा। राजा ने कहा—कोई हानि नहीं, आप अशोक वाटिका में विश्राम कीजिये। वहाँ के शीतल पवन से आपको शान्ति प्राप्त होगी।

स्थूलीभद्र अशोक वाटिका में बैठकर विचार करने लगे—अरे, यह मन्त्री पद भी कितनी हेय वस्तु है ? इसीके कारण आज पिता को कुमौत मरना पड़ा। मन्त्री पद का अर्थ है—राजा को और प्रजा को प्रसन्न रखना। आत्मा की आवाज को वहाँ स्थान नहीं है, आखिर इस झंझट से फायदा क्या है ? दुनियाँ को प्रसन्न करते क्यों फिरें ? अपने आत्मा की ही चाकरी आराधना क्यों न करें ? पिता की मृत्यु और इस प्रकार के विचारों से उनका हृदय संसार से विरक्त हो गया, वैराग्य के रंग में रंग गया। राजदरबार में आकर उन्होंने राजा से कहा—“राजन्, मुझे मन्त्रीपद की आवश्यकता नहीं है आपका कल्याण हो।” यह कहकर वे तुरन्त वहाँ से चल दिये। राजा ने समझा कि ये कोशा के प्रेम पाश में बँधे हुए हैं अतः वह जायेंगे। परन्तु उन्होंने देखा कि वे एक दुर्गन्धमय मार्ग से जा रहे

और नाक के आगे हमाल तक नहीं किया। अब तो उन्हें विश्वास हो गया कि इस पर वैराग्य का रंग पूरा चढ़ा है। उन्होंने श्रेयक को प्रधान पद दिया और उसने भी उसे स्वीकार कर लिया।

(४)

स्थूलीभद्र एक प्रसिद्ध जैनाचार्य संभूतविजय के पास गये और दीक्षा ग्रहण की। वे वहाँ रहकर ज्ञान प्राप्त करने लगे। और थोड़े ही समय में उन्होंने मन एवं काम वासना पर अधिकार जमा लिया।

चौमासा (वर्षा - चातुर्मासा) आने पर साधु चार मास तक एक ही स्थान पर रहते हैं। (भ्रमण नहीं करते) अतएव चातुर्मासा आरंभ होने से पहिले ही बहुत से शिष्य गुरु के पास आकर भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने की अनुमति मांगने लगे। किसी ने कहा-मैं सिंह की गुफा के द्वार पर जाकर रहूँगा, और ४ मास तक उपवास करूँगा। किसी ने कहा-मैं सर्पों की बामी के निकट रहकर ४ मास उपवास करते हुए ध्यान लगाऊँगा। किसी ने कहा-मैं ३ मास कुए की मैड के पास ध्यानास्थित रहकर उपवास करूँगा इत्यादि। परन्तु स्थूलीभद्र ने कहा-मैं कोशा वैश्या के रंग-महल में रहकर मधुरा-हार करते हुए चौमासा बिताऊँगा। गुरु ने अपने ज्ञान से सबकी इच्छायें उचित समझ कर आज्ञा प्रदान करदी। सब साधु भिन्न भिन्न स्थानों को चले गये।

कोशा स्थूलीभद्र के वियोग से व्यथित रहती थी, रो-रो कर दिन बिता रही थी। न दिन को चैन था न रात को आराम। कभी-कभी श्रेयक उसके यहां जाते और उसे धर्य दे आते थे।

मुनि स्थूलीभद्र कोशा के द्वार पर पहुँचे तो दासी ने तुरन्त भीतर जाकर कोशा को खबर दी। वह स्थूलीभद्र का नाम सुनते ही हर्षोन्मत्त होकर द्वार की ओर दौड़ी। आज इतने दिन बाद

उसने अपने जीवनप्राण स्थूलीभद्र को पुनः पाया, परन्तु दूसरे ही वेश में। स्थूलीभद्र ने कोशा से पूछा—बाई मैं आपके घर में आ सकता हूँ ? कोशा ने उत्तर दिया—प्रियतम, घर भी आपका और दासी भी आपकी है, आज्ञा किससे मांगते हो ?

स्थूलीभद्र ने कहा—कोशा वे दिन भूल जाओ। अब तो साधु हो चुका हूँ। आज्ञा दोगी तो ही भीतर आ सकूँगा। कोशा ने आदर पूर्वक कहा—भीतर घधारिये, मेरे योग्य सेवा बतलाइये।

मुनि ने कहा—अपने रंगमहल में चौमासा बिताने की आज्ञा दे सकती हो क्या ? कोशा ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और वे वहाँ रहने लगे।

वर्षाऋतु, कोशा जैसी अलौकिक रूप लावण्य की खान वेश्या, भोगविलास की रंगभूमि, विचित्र चित्रों से चित्रित कोशा का विलास-भवन ! परन्तु स्थूलीभद्र मुनि तो अद्वितीय मुनि थे, उनके मन पर इन सब सुख सामग्री का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इतना ही नहीं, वे नित्य नये-नये स्वादिष्ट भोजन करते, कोशा अनेक प्रकार से उन्हें समझाती, गीत वाद्य और नृत्य का अलौकिक प्रभाव डालकर रिझाती, पर मुनि का हृदय तो पत्थर चट्टान सा बन गया था। मुनि पर रंग चढ़ाया सो न चढ़ा। अन्त में कोशा को ही अपने पाप मय जीवन से घृणा उत्पन्न हागई। उसने विनयपूर्वक कहा—पूज्य आपका संसार अलौकिक है। मैं कुपथ पर जाती रही हूँ। अब तो कृपा करके मुझे भी सन्मार्ग बतलाइये।

स्थूलीभद्र ने उसे धर्म का मम समझाया और कई व्रत ग्रहण कराये।

चौमासा बीतने पर चारों साधु गुरु के पास आये। गुरु ने पहले साधु से पूछा—हे दुष्कर कर्म करने वाले, तुम कुशल से हो ?

श्री प्रकार उन्होंने तीनों साधुओं से प्रश्न किया। उनके तप से सिंह आदि भयंकर प्राणी भी शान्त हो गए थे। अतः उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँची थी। जब स्थूलीभद्र गुरु के समीप गये तो विशेष आदर देते हुये उन्होंने उनसे भी यही प्रश्न किया। अन्य शिष्यों को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने सोचा—इसने ऐसा अनिष्ट कर्म किया है। यह मन्त्री-पुत्र है, इसलिये गुरु इसका अन्याय आदर करते हैं। खैर, अगला चौमासा आने पर देखा जायगा। चातुर्मास को राह देखते हुए वे संयम और तप का जीवन बिताने लगे।

(५)

जो शिष्य शेर की गुफाओं के सामने ध्यान लगाकर चार मास तक रहा था, उसने दूसरा चौमासा आने पर कहा—गुरुदेव ! मैं भ्रांति-भ्रांति के भोजन करते हुए कोशा के यहाँ चातुर्मास करूँगा। गुरु ने समझ लिया कि इस कार्य में स्थूलीभद्र के सिवाय कोई पूरा नहीं उतर सकता। शिष्य ने कहा, इसमें मुश्किल ही क्या है ? गुरु ने बहुत समझाया कि यह कार्य बहुत कठिन है। तुम चरित्र भ्रष्ट हो जाओगे, पर यह न माना, और कोशा के द्वार पर चला ही गया। वह तो अपने को संयमशूर मानता था।

कोशा ने मुनि को नमस्कार किया। मुनि ने चौमासा बिताने के लिए उसका रंग महल माँगा, और कोशा ने उसे वहाँ रहने की आज्ञा देदी।

कोशा को अब धर्मज्ञान हो चुका था। वह समझ गई कि यह मुनि स्थूलीभद्र की प्रतिद्वन्द्विता करने के लिए आए हैं। एक दिन दो-दोहर को वह सुसज्जित होकर मुनि के पास गई। मुनि तो देखते ही विचलित हो गये। उन्होंने ऐसा अलौकिक रूप लावण्य पहले कभी नहीं देखा था। उसका संयम पवन के झोंकों से डिगमिग पुष्पलता के

समान डांवा-डोल हो गया। वे अपने को न संभाल सके, और दिल की बात कोशा से कह ही तो दी।

कोशा ने सोचा मुनि मन से तो भ्रष्ट हो गये। अब इन्हें सन्मार्ग पर लाना चाहिये। उसने कहा मुनिराज, बिना धन के आपकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। मुनि ने उत्तर दिया कि हम लोगों के पास धन कहां से आये? कोशा ने उन्हें बताया कि आप नेपाल देश में जाइये। वहां प्रथम बार जाने वाले मुनि को राजा रत्नकंवल दान देता है।

मुनि चौमासे में एक ही जगह रहते हैं परन्तु मनोभिलाषा पूरी होने की लालसा से मुनि ने वह प्रतिज्ञा भंग की, और नेपाल जाकर रत्नकंवल प्राप्त किया। वह रत्नकंवल लेकर वापस आरहे थे कि मार्ग में उन्हें चोरों ने पकड़ लिया परन्तु मुनि समझ के बिना कुछ हानि पहुंचाए छोड़ दिया।

रत्नकंवल लेकर मुनि कोशा के पास पहुँचे। कोशा ने स्नान करके उससे शरीर पोंछा और उसे कूड़े में फेंक दिया। यह देखकर मुनि ने आश्चर्य एवं दुख के साथ कहा—कोशा इतनी मूल्यवान वस्तु तुमने इस तरह फेंक दी? मैं इसे कितने परिश्रम से लाया था। कोशा ने उत्तर दिया—मुनिराज, क्या आपकी आत्मा इससे कम मूल्यवान है? उसे मलिन करने में आपको दुख नहीं होता? फिर मैंने इस रत्नकंवल को मलिन करके फेंक दिया तो दुख की क्या बात है?

यह सुनते ही मुनि की आँखें खुल गईं। ओहो, मेरा कितना पतन हो गया। उन्होंने कोशा का आभार माना और कहा—कोशा तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। अब मैं गुरुदेव के पास जाकर अपनी भूल का प्रायश्चित्त करूंगा। कोशा ने मुनिराज से क्षमा मांगी और कहा—मुनिराज, मैंने आपसे अनुचित कार्य कराया है, परन्तु आपके हित के लिये ही।

मुनि गुरु के पास गये और भूल का प्रायश्चित्त करके पुनः विशेष सावधानी के साथ संयम व्रत का पालन करने लगे ।

(६)

स्थूलीभद्र अखंड ब्रह्मचर्य का पालन और हृदय को उत्तरोत्तर अधिक पवित्र करते हुये देशाटन करने लगे । उन्होंने अपने मन पर पूरी तरह से काबू पा लिया था ।

उसी समय एक बार १२ वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा । साधुओं की भिक्षा मिलनी भी कठिन हो गई, अतः वे समुद्रतीर-वर्ती फलयुक्त प्रदेशों के भिन्न भिन्न स्थानों में जा बसे । अकाल निकल जाने पर जब वे वहाँ से लौटे तो बहुत से शास्त्र पाठों को भूल चुके थे, अतः मुनि संघ ने विचार किया कि इसी प्रकार बार बार दुष्काल पड़ा तो सब ज्ञान विस्मृत हो जायगा । अब समय परिवर्तित हो चुका है, स्मरण-शक्ति घट रही है, अतः जिसे जितना स्मरण हो वह सब संग्रहीत करना चाहिये ।

सबसे विचार करके पाटलीपुत्र में साधुओं की एक परिषद् की और उपरोक्त विचारानुसार सबके पास से सूत्र पाठ एकत्रित किया । इस प्रकार समस्त शास्त्र संग्रहीत होगये, किन्तु एक महान ज्ञान शास्त्र रह गया । उसके लिये साधु सन्त ही चिन्ता में पड़ गये ।

उन दिनों सभूतविजय जी के समान ही अद्वितीय विद्वान् द्रवाहु नामक एक आचार्य थे । उन्हें सम्पूर्ण १४ शास्त्र पूर्ण स्थ थे । परन्तु वे उस समय नेपाल देश में ध्यानावस्थित । संघ ने उन्हें बुलाने के लिये दो साधु भेजे । उन्होंने नेपाल आकर आचार्य भो जी प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा कि हाराज, संघ ने आपको पाटलीपुत्र पधारने की विनती की है । आचार्य ने उत्तर दिया कि इस समय मुझे १२ वर्ष तक ध्यानावस्थित बना है । उसके पूरे होने से पूर्व वहाँ नहीं जा सकता । साधुओं ने टली पुत्रवापिस आकर संघ को यह समाचार सुना दिया ।

तदनंतर संघ ने अन्य दो साधुओं को भेजा और उनसे कहा कि तु आचार्य श्री से जाकर पूछो कि संघ की आज्ञा का उल्लंघन करने वा को क्या दंड मिलना चाहिये ? यदि वे कहें कि उसे संघ से बाहर क देना चाहिये तो तुम कहना कि आप इस दंड के भागी हैं ।

मुनियों ने वहां जाकर इसी प्रकार प्रश्न किया । तब आचार्य श्री ने कहा कि संघ कृपा करके बुद्धिमान साधुओं को मेरे पास भेजें त मैं उन्हें समस्त शास्त्र पढ़ा दूंगा ।

संघ को जब यह समाचार मिला तो उसने स्थूलीभद्र तथा अ साधुओं को नेपाल भेजा । स्वामी भद्रबाहु का ध्यान चालू होने बहुत थोड़ा समय मिलता था । इसलिये वे नित्य बहुत थोड़ा अभ्या कराते थे । इस प्रकार धीमे-धीमे पढ़ने से साधु उकता गये और स छोड़कर चले आये । केवल एक स्थूलीभद्र ही धैर्य पूर्वक पढ़ते रहे उन्होंने धीमे-धीमे अधिकांश शास्त्र पढ़ लिये ।

(७)

स्थूलीभद्र की सातों बहिनों ने दीक्षा ले ली । जब उन्होंने सुना स्थूलीभद्र ज्ञानाभास कर रहे हैं तो वे वंदन करने के लिये स्वामी भद्रबा के पास गईं और पूछा गुह महाराज, स्थूलीभद्र कहां है ? श्री भद्रबा ने कहा कि उस पास वाली गुफा में ध्यान लगाये बैठे होगा । वे उ गुफा की ओर चलीं । जब स्थूलीभद्र को मालुम हुआ कि उन बहिनें आ रही हैं तो उन्होंने अपनी सीखी हुई विद्या का प्रभा दिखलाने के लिये सिंह का रूप धारण कर लिया । जब यक्षा आ उसकी बहिनें गुफा में पहुँचीं तो सिंह को देखकर आश्चर्य करने लगी उन्हें संदेह हुआ कि सिंह शायद स्थूलीभद्र को खा गया होगा । उन्हो वहाँ से लौटकर सब हाल स्वामी भद्रबाहु को कहा । श्री भद्रबाहु अपने ज्ञान बल से सब हाल जानकर उनसे कहा अब तुम फिर जा स्थूलीभद्र वहीं मिलेगा । जब यक्षा आदि पुनः वहाँ पहुँचीं तो उन्हो स्थूलीभद्र को वहाँ बैठे हुये पाया । परस्पर सबने सुख शांति पूछी ।

अब स्थूलीभद्र शास्त्र का थोड़ा सा अवशेष रहा हुआ पूष-ज्ञान सीखने के लिये स्वामी भद्रबाहु के पास गये तो उन्होंने कहा—तुम्हें अब शास्त्र नहीं सिखाया जा सकता। तुम उनके अयोग्य हो। यह सुनकर स्थूलीभद्र सोचने लगे कि ऐसा मेरा क्या अपराध हुआ। तुरन्त उन्हें विद्याबल से अपने सिंह रूप धारण करने की घटना याद आई, और नम्रता पूर्वक वहा-महाराज, मेरी भूल हुई, क्षमा कीजिये। भविष्य में ऐसी भूल न होगी। परन्तु भद्रबाहु स्वामी ने उनकी प्रार्थना फिर भी स्वीकार नहीं की। अन्त को जब संघ ने मिलकर उनसे प्रार्थना की तो उन्होंने शास्त्र का शेष भाग स्थूलीभद्र को सिखला तो दिया, परन्तु अर्थ ज्ञान अब भी न कराया। स्थूलीभद्र समग्र शास्त्रों के ज्ञाता हो गये। कहते हैं कि उनके बाद किसी का भी समस्त १४ पूर्वों का ज्ञान नहीं हुआ।

जब स्वामी भद्रबाहु का अन्तकाल निकट आया और उनका स्थान ग्रहण करने लिये अत्यन्त विद्वान और ज्ञानी साधु की आवश्यकता हुई। उस समय ऐसे ज्ञानी केवल स्थूलीभद्र ही थे। अतएव उन्हें ही स्थान दिया गया। वे समस्त भारत के जैन संघ के नेता हुये।

स्थूलीभद्र अपने चरित्र और उपदेश-कुशलता के कारण खूब प्रसिद्ध हुए। देशभर में उनका जय घोष होने लगा। उनके उपदेश से लाखों मनुष्यों का कल्याण हुआ। एक से ६९ वर्ष की अवस्था में उन्होंने अनशन करके इस शरीर को छोड़ दिया।

कहा जाता है कि—

शान्तिनाथ भगवान से बढ़कर कोई दूसरा ज्ञानी नहीं हुआ।
दक्षिणभद्र राजा से बढ़कर कोई मानो नहीं हुआ।

शालीभद्र की तरह दूसरा कोई अन्निक भोगी नहीं हुआ।
और स्थूलीभद्र से बढ़कर दूसरा कोई योगी नहीं हुआ।

संसार सदा स्थूलीभद्र के संघम की गुणगाथा गाता रहेगा।

१२ राजा श्रीपाल

(१)

अंगदेश में चम्पा नामक एक नगरी थी। उसमें सिंहरथ नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम था—कमलप्रभा। उनके बड़ी अवस्था में एक कुमार पैदा हुआ, जिसका नाम रखा-श्रीपाल।

श्रीपाल जब छोटा सा था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई। रानी बहुत शोक करने लगी, किन्तु प्रधान ने उन्हें धीरज दिया और बाल राजा की दुहाई चारों तरफ फिरवा दी, किन्तु श्रीपाल का काका अजितसेन बड़ा चालाक था, अतः उसने षड्यन्त्र रचकर सेना को अपनी तरफ फोड़ लिया। एवं अधिकारियों को भी अपनी तरफ मिला लिया। रानी तथा कुमार का बध कर डालना निश्चित किया।

रानी को जब इस चालाकी (षड्यन्त्र) का पता लगा, तो आधी रात के समय वह राजकुमार को लेकर भागी। चारों तरफ अजीतसेन के सिपाही फैले हुए थे। अतः रानी ने सीधा जंगल का मार्ग ग्रहण किया। कैसा भयावना है वह जंगल ? उसमें मानों झाड़ पर झाड़ लगे हों, ऐसी घनी झाड़ी, झाड़ और झंखाड़ का पार नहीं। भीतर कहीं चीते की आवाज सुनाई देती है, तो कहीं सिंह दहाड़ रहा है। किन्तु आखिर करे क्या ? अपने प्राणपुत्र के बचाने के लिये रानी जंगल में होकर भागती जा रही थी। बेचारी ने घर से बाहर कभी पैर भी न रखा था। किन्तु आज भयंकर बन में अकेली को ही घूमना पड़ रहा है। उनके पैरों में से खून बहने लगा—और सारे कपड़े फट गये।

दूसरे दिन सवेरा हुआ। इस समय जंगल भी पूरा पार होने आया था। यहाँ पहुँचकर श्रीपाल ने कहा मां! भूख लगी है, अतः दूध, शक्कर, और चावल मुझे दो।" कमलप्रभा विलख बिलख कर रोती हुई बोली, बेटा! दूध, शक्कर और चावल के, हमारे बीच में हजारों कोस की दूरी पड़ गई है, अब तो जुआर-बाजरा की राबड़ी ही मिल जाय तो भी परमात्मा की दया समझनी चाहिए।"

श्रीपालकुमार भूखा है, रानी के पास खाने को कुछ भी नहीं है, ऐसी ही दशा में वे कोढ़ियों के झुन्ड के पास पहुँचीं।

सात सौ कोढ़ियों का एक झुन्ड, जिनके शरीरों पर भयंकर कोढ़ था और हाथों पैरों की अंगुलियाँ गल गई थीं, उनके पास पहुँचकर रानी ने उनसे कहा कि—"भाइयो! विपत्ति के मारे हम आपके पास आये हैं अतः तुम हमें सहारा दो।" यों कहकर रानी ने सब बात कह सुनाई। कोढ़ियों ने उत्तर ब्रिया, कि माता जी! हमें सहायता देने में कुछ भी आपत्ति नहीं है, किन्तु जो कोई भी हमारे साथ रहेगा, उसे भयंकर कोढ़ हो जावेगा, रानी ने फिर कहा कि—"जो कुछ होना होगा, वह होगा, किन्तु अभी तो हमें अपने प्राण बचाने दो।"

कोढ़ियों ने अपने झुन्ड में उन्हें मिला लिया और रानी को एक सफेद चादर ओढ़ा दी। उसी समय राजा अजीतसेन के सिपाही हूँदते-हूँदते वहाँ पहुँचे और उन्होंने कोढ़ियों से पूछा—"तुम लोगों ने किसी स्त्री और एक कुमार को इधर से भागते हुए देखा है क्या? कोढ़ियों ने उत्तर दिया कि—"हमें इस विषय में कुछ भी मालूम नहीं है और न हमने किसी को इधर से जाते देखा ही है।" सिपाही लोग लगे लगे और रानी तथा कुमार बच गये।

कोढ़ियों ने भूखे कुँवर को खाने को दिया। कुँवर की भूख

तो दूर हो गई, किन्तु कोढ़ियों का अन्न खाने से उम्बर जाति का कोढ़ हो गया। जिस तरह उम्बरा (वृक्ष विशेष) के तने की छाल फटी हुई होती है, उसी तरह श्रीपाल कुँवर का शरीर फट गया। सब ने उनका नाम रख दिया—उम्बर राजा।

माता से यह सब कैसे देखा जा सकता था ? रास्ते में किसी से बात की, तो मालूम हुआ कि—“कौशाम्बी में एक वैद्य रहते हैं, वे चाहे जैसा कोढ़ हो, दूर कर देते हैं।” यह सुनकर रानी कौशाम्बी के लिए चल दी, और सब कोढ़ियों से कह दिया—कि तुम लोग उज्जैन जाकर ठहरना, मैं तुम्हें वहीं आकर मिलूंगी। कोढ़ियों का दल उज्जैन की तरफ चल दिया।

(२)

उस समय उज्जैन में प्रजापाल नामक एक राजा राज्य करते थे। उनके दो कन्यायें थीं। एक का नाम था सुरसुन्दरी और दूसरी का मैना। उन दोनों को राजा ने खूब पढ़ाया—लिखया। फिर एक बार परीक्षा करने के लिये उन्हें राजसभा में बुलवाया।

राजा ने दोनों कन्याओं से पूछा, कि—“बोलो, तुम आप-कर्मि हो या बाप-कर्मि।” सुरसुन्दरी ने कहा—“बाप-कर्मि” और मैना ने उत्तर दिया—“आप कर्मि।” राजा सुरसुन्दरी पर बड़े ही प्रसन्न हुए और मैना पर नाराज। उन्होंने सुरसुन्दरी का विवाह एक राजा के कुँवर से कर दिया और मैना के लिए बुरे से बुरे वर ढूँढने का विचार किया।

राजा नगर से बाहर घूमने निकले। वहाँ कोढ़ियों का एक दल उन्हें दिखाई दिया। जिन्हें देखने वालों को घृणा हो जाती हो, ऐसे कोढ़ियों के झुन्ड में से राजा ने उम्बर—राजा को पसन्द किया और मैना का विवाह उसी के साथ कर दिया। फिर राजा ने कहा

कि—“लड़की ! अब अपने आप-कर्मपिन बतलाना ।” मैना ने उत्तर दिया ।” बड़ी खुशी से पिताजी ! जो मुझ में कुछ --अपनापन होगा, मेरा पुण्य कर्म होगा तो दुख टलकर निश्चय ही मैं सुखी हो जाऊँगी । नहीं तो आपका दिया हुआ कितने क्षण रहेगा ?”

मैना और उम्बर—राणा दोनों चले । मैना ने कहा —“स्वामी-नाथ ! गांव में गुरुराज पधारें हैं, वे निराधारों के आधार और दुखी-जनों के रक्षक हैं ।” यह सुनकर उम्बर राणा मैना के साथ उनके दर्शन करने गये । भक्ति-भाव से दर्शन कर चुकने के बाद, मैना ने पूछा, कि—“हे गुरु महाराज ! कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरे स्वामी का रोग दूर हो और उनका शरीर अच्छा हो जाय ।”

गुरु महाराज ने कहा—कि—“नव अम्बल करो और नवपदजी की आराधना करो । यदि सच्चे भाव से यह आराधना करोगे, तो नख में भी रोग न रहेगा ।”

दोनों ने अम्बल—व्रत करना शुरू किया । ज्योंही एक, दो और तीन अम्बल व्रत पूरे हुए, त्यों ही शरीर में फिर से अच्छापन आने लगा । और पूरे नौ अम्बल होते ही तो सारा रोग दूर हो गया । प्रभुप्रजा के स्नातन जलके लगाने से श्रीपाल का शरीर सोने की तरह स्वच्छ हो गया । उन सात सौ कोढ़ियों ने भी ऐसा ही किया और उनके रोग भी दूर हो गये ।

अब मैनासुन्दरी के हर्ष की कोई सीमा न रही । जब कमल-प्रभा को यह बात मालूम हुई, तो वह रास्ते से वापस लौट आई और उज्जैन में आकर उन सबसे मिली ।

गांव ही में मैनासुन्दरी का मामा रहता था । उसे जब यह मालूम हुई, तो वह गाजे-बाजे से इन तीनों को अपने घर लिवा लाया

और बड़ा आदर-सत्कार करके उन्हें रहने के लिये अलग राजमहल दिया ।

(३)

एकबार श्रीपाल कुंवर घोड़े पर बैठकर गांव में घूमने निकले । वहाँ एक मनुष्य ने उंगली का इशारा करके कहा कि—“ये घोड़े पर बैठकर राजा के जमाई जा रहे हैं ।” श्रीपाल ने ये शब्द सुने कि उनके हृदय में यह विचार आया—

उत्तम निज गुण से सुने, मध्यम बाप गुणेन ।

अधम ख्यात मामा गुणे, अधमाधम ससुरेण ।

अर्थात्—जो अपने गुणों के कारण पहचाने जाते हैं, वे उत्तम पुरुष हैं । जो पिता के गुणों के कारण पहचाने जाते हैं वे मध्यम पुरुष हैं । जो मामा के गुणों के कारण मशहूर होते हैं वे अधम हैं और जो ससुराल के नाम से पहचाने जाते हैं, वे अधम से भी अधम यानि सबसे गिरे हुए माने जाते हैं ।

“मुझे धिक्कार है कि मैं सुसराल के नाम से पहचाना जाता हूँ । अच्छा, अब मुझे ससुर के गांव में न रहना चाहिये ।” यों सोचकर के घर आये, और माता तथा स्त्री से इजाजत मांगी । कि—“परदेश जाकर मैं धन कमाऊँगा और उसके बल से अपना राज्य वापस लौटाऊँगा, अतः आप लोग स्त्रीकृति दीजिये ।” माता और स्त्री को यह बात भला अच्छी क्यों लगती ? किन्तु सब बातें अपनी इच्छा के अनुसार ही कब होती हैं ? एक वर्ष में वापस लौट आने का वायदा करके श्रीपाल कुमार चल दिये ।

ग्राम नगर और नदी-नलों को पार करते हुए वे एक पहाड़ के पास पहुँचे । वहाँ जंगल में एक व्यक्ति विद्या की साधना कर रहा था । उस एक अच्छे मनुष्य की आवश्यकता थी जो उसकी आराधना में

सहायता पहुंचा सके । वह मनुष्य यदि चतुर न हो, तो विद्या की साधना ठीक हो नहीं सकती, अतः उसने श्रीपाल से अपने पास रहने की प्रार्थना की । श्रीपाल वहाँ कुछ दिन ठहर गये जिससे उस मनुष्य की वह विद्या सिद्ध हो गई । इससे प्रसन्न होकर उस मनुष्य ने श्रीपाल को दो विद्यायें सिखलाईं । एक के होने पर मनुष्य पानी में नहीं डूबता और दूसरे के प्रभाव से शरीर पर किसी हथियार की चोट नहीं लगती ।

श्रीपाल कुमार यहाँ से भी चल दिये । चलते-चलते वे भडौंच के बन्दरगाह पर पहुँचे । वहाँ धवल सेठ नामक एक जबरदस्त व्यापारी पांच सौ जहाजों में माल भरकर विदेश यात्रा को जाने के लिये तैयार थीं । श्रीपाल को दूसरे देश में भ्रमण करने की इच्छा थी । अतः सौ सुवर्ण मुहरे प्रतिमास किराया देने की शर्त करके वे जहाज में बैठ गये । वायु के अनुकूल होने पर जहाज चल दिये ।

(४)

जहाज में विशेषज्ञ लोग बैठे नवशे और कितावें देखते हैं, नाविक लोग अपनी पतवारें चलाते हैं, ध्रुवतारा देखते हैं, निशान पहिचानने वाले पानी की गहराई नापते हैं, कुली लोग माल जमा-जमा कर रखते हैं, हवा के जानने वाले हवा की गति देखते हैं, पहरा देने वाले पहरा देते हैं, पाल वाले पाल और उसकी डोरियां सँभालते हैं, हलकारे लोग दौड़-दौड़ कर सब काम-काज करते हैं और जहाज बीच समुद्र में चले जा रहे हैं ।

इतने ही में एक हवा का जानने वाला बोला, “सेठजी ! पवन धीरे-धीरे बहसो है और सामने ही बब्रकोट नामक बन्दरगाह दिखाई दे रहा है । वहाँ थोड़ी देर के लिये जहाजों के लंगर डलवा दीजिये, तो जिन्हें मीठा पानी और ईंधन लेना हो, वे ले लें । धवल

सेठ ने हुक्म दिया कि—“बब्बरकोट बन्दरगाह पर जहाजों के लंगर डाल दिये जावें।”

जहाज बब्बरकोट पर ठहरे। वहाँ राजा के सिपाहियों ने महसूल माँगा। धबल सेठ ने कहा—“महसूल काहे का?” हमें यहाँ कौनसा व्यापार करना है जो तुम्हें महसूल दें?” इस बात पर बड़ी तकरार हुई किन्तु धबल सेठ न माने। अब तो राजा ने सेना भेजी, जिसने आकर धबल सेठ को पकड़ लिया और एक वृक्ष से उल्टा लटका दिया। श्रीपाल ने सोचा, कि—“सेठ ने यह बुग काम किया। जो महसूल नहीं दिया। अब ये जान से मारे जायेंगे, साथ ही सब जहाज भी जब्त हो जायेंगे।” यों सोचकर, लश्कर के सामने आ उसे ललकारते हुए बोले—कि “खबरदार, धबल सेठ का बाल भी अगर छू लिया, तो खैरियत मत समझना। अभी तुम लोगों ने श्रीपाल का मजा नहीं चखा है।” यों कहकर, वे सेना की तरफ झपटे।

भारी युद्ध मचगया, किन्तु श्रीपाल के शरीर में उस विद्या के प्रभाव से चोट ही न पहुँची थी। इधर सेना के मनुष्य धड़ाधड़ जमीन पर गिरने लगे। थोड़ी ही देर में तो सारा लश्कर छिन्न-भिन्न हो गया। श्रीपाल ने धबल सेठ को छुड़ा दिया। धबल सेठ ने अपना जीवन बचाने के बदले में आधे जहाज श्रीपाल को दे दिये।

बब्बरकोट के राजा को जब इस पराक्रमी-पुरुष का पता चला, तो उसने इनका बड़ा स्वागत किया और अपनी कन्या श्रीपाल को विवाह दी।

जब धबल सेठ ने श्रीपाल से कहा कि—“श्रीपाल जी, रतनद्वीप अभी बहुत दूर है और यहां रुकने से नुकसान होगा। अतः शीघ्र ही विदाई लीजिये।” श्रीपाल ने अपनी स्त्री के साथ

विदाई ली। अब तो जहाज चल दिये और थोड़े ही समय में वे रत्नद्वीप बन्दरगाह पर जा पहुँचे।

यहाँ पहुँच कर, धवल सेठ अपना तथा श्रीपाल का किराना बेचने लगे। और श्रीपाल आस-पास का देश देखने लगे। वहाँ पास ही एक पहाड़ था। उस पहाड़ पर एक मन्दिर था उसके किवाड़ इस तरह बन्द हो गये थे, कि किसी के खोले खुलते नहीं थे। वहाँ के राजा ने यह निश्चय कर रखा था, कि जिससे यह किवाड़ खुलेंगे- उसको मैं अपनी कन्या विवाह दूँगा। श्रीपाल से वे किवाड़ खुल गये, अतः राजा ने अपनी कन्या उन्हें विवाह दी।

धवल सेठ ने अपने तथा श्रीपाल के किराने को बेचा और वहाँ से नया माल खरीद कर जहाजों में भर लिया। अब तो जहाज पीछे लौट पड़े।

श्रीपाल अपनी दोनों स्त्रियों के साथ जहाज के सामने ऊँचे भाग की खिड़की में बैठकर समुद्र की सैर और आनन्द करते हुए जा रहे थे।

इधर धवल सेठ विचारने लगे, कि यह श्रीपाल खाली हाथ आया था, उसके आज इतनी बड़ी सम्पत्ति हो गई है। यहीं दो सुन्दर स्त्रियों से अपना विवाह भी कर लिया। अहा! वे स्त्रियाँ कैसी सुन्दर हैं। यदि मैं श्रीपाल को समुद्र में फेंक दूँ, तो ये दोनों स्त्रियाँ और सारा धन मुझे ही प्राप्त हो जायगा।”

यों सोचकर धवल सेठ ने श्रीपाल के साथ बड़े प्रेम से बातें करना शुरू कर दिया। फिर एक बार जहाज के किनारे पर मचान धवाया और धवल सेठ ने उस पर चढ़कर आवाज दी, कि-“श्रीपाल जी, यहाँ आइये, जल्दी आइये! यदि देखना हो तो, यहाँ बड़ा अच्छा कौतुक है।” श्रीपाल कुमार के मन में दगे की बू भी न थी,

अतः वे उस मचान पर चढ़ आये । धवल सेठ ने एक धक्का मारा जिससे श्रीपाल समुद्र में गिर पड़े ।

समुद्र में काला-भँवर पानी, जिसमें मकान जितनी ऊँची-ऊँची तरंगें उठती थीं । उसमें मगर का तथा अन्यान्य भयंकर प्राणी बाहर की तरफ मुँह निकालते थे । श्रीपाल जी ने श्रीनवपद जी का ध्यान किया और समुद्र में तैरने लगे ।

जलतरणी विद्या के प्रभाव से वे तैरते-तैरते कोंकण देश के किनारे जा पहुँचे । यहाँ तक पहुँचने में वे थककर चूर हो गये थे, अतः पास हो के एक चंपे के झाड़ के नीचे जाकर सो गये ।

(६)

कोंकण देश के राजा की एक कन्या जवान हो गई, जिसके लिये एक वर को बड़ी ढूँढ़ खोज हो रही थी किन्तु कहीं भी अच्छा वर न मिल सका, अतः ज्योतिषी बुलवाकर उनसे ज्योतिष दिखावाया । ज्योतिषी भी पूरे ज्योतिषी थे, अतः उन्होंने कहा, कि—“अमुक बार तथा अमुक तिथी को, अमुक समय समुद्र के किनारे पर जाना, वहाँ एक प्रतापी पुरुष मिलेगा, उसी को अपनी कन्या विवाह देना ।”

आज ठीक वही तिथि और वही दिन था, अतः राजा के सिपाही समुद्र के किनारे आ पहुँचे । वहाँ आकर देखते हैं कि चम्पे के झाड़ के नीचे एक महाप्रतापी पुरुष सो रहा है ।

श्रीपाल कुमार जब जागे, तो उन्हें अपने आस-पास सिपाहियों का झुंड दिखाई दिया । सिपाहियों ने श्रीपाल को प्रणाम करके कहा कि—“आप राजमहल को पधारिये, आपको राजा की तरफ से निमन्त्रण है ।”

श्रीपाल राजमहल को गये । राजा उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न

हुए, और अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया। फिर राजा ने उन्हें एक ओहदा दिया कि सभा में जो कोई नया पुरुष आवे, उसे पान का बीड़ा दें।

(७)

श्रीपाल के समुद्र में गिरते ही धवल सेठ ने अपना पाप मय नीच प्रयत्न करना शुरू कर दिया। उसने उन दोनों सतियों का सत्सूटने की बड़ी कोशिश की, किन्तु सफल न हो सका।

श्रीपाल की दोनों स्त्रियां जिनेश्वर देव का स्मरण करती हुई अपना समय व्यतीत करती रहती थीं।

यों करते-करते धवल सेठ के जहाज, कौकण देश के किनारे पर पहुँचे। वह एक बड़ी भेंट लेकर राजा के यहां गया। वहाँ दरबार में जाकर बैठते ही, श्रीपाल ने उसे पान का बीड़ा दिया।

यह देखकर धवल सेठ बड़े आश्चर्य में पड़ गया। वह विचारने लगा, कि—“यह मेरा दोस्त ! यहां कैसे आ गया ? मैंने तो इसे समुद्र में फेंक दिया था, फिर भी जीवित कैसे निकल आया ? अच्छा अब मुझे इसके लिये कोई दूसरी ही तरकीब करनी पड़ेगी।”

“श्रीपाल तो हल्के डूब कुल का मनुष्य है।” यह प्रमाणित करने के लिए उसने बड़े-बड़े प्रपंच रचे, किन्तु अन्त में पाप का गड़ा, फूट ही गया और राजा को यह बात किसी तरह मालूम हो गई कि धवल सेठ महा पापी है। अतः राजा ने धवल सेठ को प्राण एंड देने का विचार किया। किन्तु श्रीपाल के चित्त में यह बात आई कि—“चाहे जो हो, किन्तु धवल सेठ आखिर तो मेरे आश्रय-पाता ही हैं, अतः उन्हें ऐसा दंड नहीं मिलना चाहिये।” उन्होंने धवल सेठ को छुड़वाया और अपना महमान बनाया।

श्रीपाल ने धवल सेठ पर बड़ी कृपा की, किन्तु धवल सेठ के मन में से जहर दूर नहीं हुआ था। उन्होंने कहीं से एक पालतू चन्दन-गोह प्राप्त की और रात्रि के समय उसकी पूंछ में रस्सी बांधकर उसे श्रीपाल के महल की दीवार पर फँकी। वह गोह लोहे की कील की तरह टूट होकर वहीं चिपक गई। अब धवल सेठ ने उस रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ना आरम्भ किया। पर जब वे आधी दूर पहुँचे, तो हाथ में से वह डोरी खिसक गई, जिसके कारण वे धम से पत्थर पर आ गिरे, और तत्क्षण उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

धवल सेठ की सारी सम्पत्ति उनके मित्रों को सौंप दी गई।

(८)

राजा की एक कुमारी ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी, कि मैं अपना विवाह उसी पुरुष से करूँगी, जो मुझे वीणा बजाने में हरा दे। श्रीपाल ने उसे वीणा बजाने में जीत कर, उसके साथ विवाह कर लिया।

एक अद्भुत रूप वाली राजकुमारी ने अपना स्वयंवर रचवाया था। श्रीपाल वहाँ पहुँचे। उस कन्या ने वरमाला उन्हीं के गले में डाल वर लिया।

एक राजा की लड़की ने, यह निश्चय किया था, कि अमुक दोहे की पूति करने वाले मनुष्य के साथ मैं अपना विवाह करूँगी। उस दोहे की पूति श्रीपाल ने करके उस कन्या से अपना विवाह कर लिया।

एक राजा की कन्या को जहरी साँप का विष चढ़ा था। श्रीपाल ने जहर दूर कर दिया, अतः राजा ने प्रसन्न होकर यह कन्या उन्हीं ही विवाह दी।

एक जगह उस व्यक्ति के साथ कन्या का विवाह करना तय हुआ था, जो राधावेध साधे। श्रीपाल ने राधावेध साधा और उस कन्या से भी अपना विवाह कर लिया।

इस तरह षरदेश में आठ स्त्रियों से विवाह कर तथा बहुत सा धन एकत्रित करके श्रीपाल अपनी बड़ी भारी सेना लेकर उज्जैन के पास आ पहुँचे ।

उज्जैन के राजा ने समझा, कि कोई बड़ा भारी राजा चढ़ आया है, अतः वह सामने चलकर शरण में आ गया ।

श्रीपाल अपनी माता तथा प्रथम पत्नी मैता से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए । आनन्दोत्सव का प्रारम्भ हुआ ।

वहाँ एक नाटक मण्डली नाटक करने लगी । सभी पात्र अपना अपना पाठ आनन्द पूर्वक कर रहे थे, किन्तु एक नटी खड़ी न हुई । उस नटी के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह रही थी । जांच करने पर सब हालात ठीक-ठीक मालूम होगये । वह नटी और कोई नहीं, स्वयं उज्जैन के राजा की पुत्री सुरसुन्दरी ही थी । उसका पति अपने शहर को जाते हुये मार्ग में ही लूट लिया गया था । डाकुओं ने सुरसुन्दरी को पकड़ कर बेच दिया और अन्त में उसे यह नटी का रोज़मर करने की नौबत आ पहुँची ।

राजा को आप-कर्मिण तथा बाप-कर्मिण की परीक्षा होगई । मैता सुन्दरी कोड़ी को ब्याही गई । पर उसके भाग्य ने लीला-लहर करदी । और सुर-सुन्दरी सुन्दर राजकुमार को ब्याही गई, उसको ऐसी विषय स्थिति हो गयी । वास्तव में कन्या का अपना भाग्य ही काम आता है । बाप क्या करे ! इसलिए कन्या आप भायी होती है, बाप भागी नहीं ।

प्रत्येक व्यक्ति को सुख-दुख अपने पाप पुण्य के अनुसार हो मिलता है, दूसरा तो निमित्त मात्र है ।

(६)

जब श्रीपाल अपना राज्य लेने के लिये सेना लेकर शुभ मुहूर्त में चल पड़े । जब चम्पा नगरी थोड़ी ही दूर रह गई, तो उन्होंने इनके द्वारा यह संदेश कहला भेजा—“राजा अजीतसेन को मालूम हो, कि

आपका पुत्र श्रीपाल जिससे आपने होशियार होने के लिये परदेश भेज दिया था, अब आ गया है। आप अब बूढ़े हो चुके हैं, अतः राज्य उसे सौंपकर धर्म-ध्यान कीजियेगा।”

अजीतसेन ने यह बात नहीं मानी, जिसके फलस्वरूप बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। इस लड़ाई में अजीतसेन हार गये। श्रीपाल राज-गद्दी पर बैठे। काका ने उस पर जो अत्याचार किये थे, उन्हें भूल कर श्रीपाल ने उनको एक सम्मान पूर्ण पद देना चाहा पर उन्हें अपनी हार एवं दुर्नीति से पश्चात्ताप होने लगा और अन्त में अजीतसेन को वैराग्य होंगया, अतः उन्होंने दीक्षा लेकर पवित्र जीवन व्यतीत किया।

श्रीपाल ने अपने राज्य में रियाया (प्रजा) को बड़ा सुख पहुंचाया और श्रीनवपदजी का बड़े ठाट-बाट से आराधन एवं उत्सव किया।

राजा श्रीपाल तथा मैना सुन्दरी आदि रानियाँ भी, उच्च जीवन व्यतीत करके अन्त में सद्गति को प्राप्त होगईं।

नवपद ये हैं—१—अरहंत २—सिद्ध ३—आचार्य ४—उपाध्याय ५—साधु ६—दर्शन ७—ज्ञान ८—चरित्र ९—और तपो इनको सिद्ध चक्र भी कहा जाता है। प्रत्येक आसोज एवं चैत्र सुदी सातम से पूनम तक में नवपदों की एक-एक दिन कुल ९ दिनों तक आराधना की जाती है। इस नवपद आराधना का अद्भुत चमत्कार है।

श्री नवपद-सिद्ध चक्र की जय। राजा श्रीपाल और मैना-सुन्दरी की जय।

आज भी श्रीनवपदजी का जाप होता है और सबके मुँह से श्रीपाल महाराज का नाम बोला जाता है, कथा बँची जाती है। धन्य हैं ऐसे धर्मी, पराक्रमी पुरुषों को और धन्य हैं सच्चे-भाव से श्रीनवपद जी की आराधना करने वालों को।

१३—महाराजा-संप्रति

(१)

पाटलीपुत्र में घर-घर, गली और मुहल्ले-मुहल्ले में सूरदास के संगीत की चर्चा हो रही थी। वह जहाँ-जहाँ जाकर अपनी सारंगी छेड़ता, वहीं लोगों की भीड़ जमा होजाती, और सब मन्त्रमुग्ध की भांति निश्चल होजाते थे। क्या मजाल कोई खाँस तो ले। समस्त पाटली-पुत्र को उसके संगीत ने पागल बना दिया था। वृद्ध भी उसके अनुपम संगीत पर मुग्ध थे और बालक भी। स्त्रियाँ भी और पुरुष भी।

पाटलीपुत्र के शासक महाराज अशोक को जब मालूम हुआ कि शहर में कोई अद्भुत संगीतकार आया है, तो उन्होंने उसे बुला लाने के लिये दो मन्त्रियों के साथ पालकी भेजी और उनसे कहा कि सूरदास को सम्मान पूर्वक राजसभा में लिवा लाओ। कलाकार का जितना आदर किया जाय, उतना ही कम है।

मन्त्रियों ने सूरदास के पास जाकर तन्नता पूर्वक कहा—महाराज, आपके लिये महाराजा अशोक ने निमन्त्रण भेजा है, राजसभा में पधारिये। सूरदास राजसभा में आये और राजा को कहलाया कि मैं पर्दे के पीछे रहकर संगीत सुनाऊँगा। आपकी इच्छा हो तो आज्ञा करें। राजा ने उत्तर दिया—हम किसी प्रकार भी इनके मन को दुखाना नहीं चाहते। खुशी से ये अपनी इच्छानुसार पर्दे के पीछे गा सकते हैं। सूरदास ने सारंगी छेड़ी। सारंगी के तारों के साथ-साथ सभाजनों के हृदय भी झंकृत हो उठे। समस्त सभा संगीत में तल्लीन होगई। राजा ने भी कभी इतना सुन्दर संगीत न सुना था। एक गीत पूरा हुआ पर राजा की पिपासा शान्त न हुई। अमृतपान से

भला कोई कभी अघाता है ? महाराज ने कहा—कुछ और सुनायें तो अच्छा हो । सूरदास ने दूसरा गीत सुनाया, जिसका भावार्थ यह था—

चन्द्रगुप्त के प्रियपुत्र बिन्दुसार के परमप्रतापी पुत्र अशोक देवों को भी प्रिय हैं, धर्म के तो वे प्राण हैं । उनका प्रिय पुत्र कुणाल आज अन्धा होकर काकिणी माँगता है ।

यह गीत सुनते ही महाराज अशोक के मुख पर ग्लानी छा गई । उन्हें अपने प्यारे पुत्र कुणाल की याद आई एवं अपनी भूल, कि जिसके कारण कुणाल को अपनी आँखों से हाथ धोने पड़े थे । उन्होंने एकबार कुणाल को पत्र लिखा था जिसमें “अधीयतां कुमार” लिखा था पर सौत रानी ने उनके स्थान पर ‘अन्धीयतां कुमार’ कर दिया था । कुणाल ने पत्र पढ़कर पिता की, रानी द्वारा बदली हुई गलत आज्ञा का भी तुरन्त पालन किया । लोगों के हजार समझाने पर भी पितृभक्त कुणाल ने अपनी आँखें फोड़ लीं । यह सब घटना राजा के आँखों के सामने आ गई । उन्हें ख्याल हुआ कि कहीं मेरा अंध पुत्र कुणाल यही तो नहीं है ? उन्होंने पूछा—सूरदास जी, आप कौन हैं ? सूरदास ने उत्तर दिया—महाराज, आपका आज्ञा—पालक पुत्र कुणाल है । राजा अशोक एक दम चौंक पड़े । अरे ! कुणाल, मेरा प्रिय पुत्र कुणाल ! अब उनसे न रहा गया, और सिंहासन से उठकर पर्दे के पीछे बंठे हुए पुत्र को गले लगा लिया । जब आवेग कुछ कम हुआ तो उन्होंने पूछा—बेटा ! तुमने गीत में “काकिणी” माँगने की बात कही थी, वह काकिणी किसे कहते हैं ? तुम क्या माँगते हो ? कुणाल ने उत्तर दिया—पिताजी, मैं राज्य माँग रहा हूँ राजा ने कहा—बेटा, कुणाल, तुम्हारी आँखें नहीं हैं, फिर राज्य कैसे करोगे ? उसने उत्तर दिया—पिताजी, मेरा पुत्र इस राज्य का उपभोग करेगा । राजा ने फिर आश्चर्य से पूछा—अच्छा, क्या तुम्हारे पुत्र भी है । कब जन्मा ? कुणाल ने उत्तर दिया “संप्रति” (अभी हाल

ही में)। यह सुनकर राजा ने कहा—अच्छा, यह राज्य आज से मैं तुम्हारे संप्रति जन्मे हुए पुत्र को देता हूँ ।

उस दिन से कुणाल के पुत्र का नाम ही संप्रति पड़ गया । थोड़े दिन बाद ही वह पाटलीपुत्र लाया गया और बाल्यावस्था में ही उसका राज्याभिषेक किया गया ।

पूत के पैर पालने में ही पहिचान लिये जाते हैं । संप्रति बाल्यावस्था से ही अपने पराक्रम का परिचय देने लगा । अश्वारोहण, वाण विद्या में, मल्ल-कुशती में, वीरता के प्रत्येक कार्य में वह थकता न था, सब में बेजोड़ था । एक बार सब कुटुम्बीजन बैठे बातें कर रहे थे । बातों में किसी ने कहा—महाराज अशोक ने समस्त देशों पर विजय प्राप्त करके चक्रवर्ती की पदवी प्राप्त की है । यह सुनकर संप्रति ने कहा, ओहो, यह तो कुछ अच्छा नहीं हुआ । तब तो मेरे लिये विजय करने को तो कुछ रहा ही नहीं । उसकी यह बात सुनकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई । सबको विश्वास होगया कि समय आने पर यह अवश्य ही प्रतापी राजा होगा ।

१६ वर्ष की आयु होने पर उसका शरीर भली भाँति विकसित होगया । उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्र के समान सुन्दर व गोल था । आँखें बड़ी-बड़ी और तेजयुक्त थीं । मस्तक विशाल और बाहु घुटनों तक लंबे थे । स्वर मधुर परन्तु दृढ़ था । उसका तेज अद्वितीय था । उसकी कड़ी निगाह से मनुष्य थर-थर कांपने लगते थे । युवावस्था में पदार्पण करते ही संप्रति ने अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर दीर्घ सेना के साथ चतुर्दिग-विजय के लिये प्रस्थान कर दिया । उसने कौशलदेश जीता और काशी पर विजय प्राप्त की । पंचाल को आधीन किया, और कुरू पर अधिकार जमाया । चतुर्दिक उसकी विजयपताका फहराने लगी । महाराजा संप्रति भारत-भू के भूषण माने जाने लगे ।

(२)

राजा संप्रति दिग्विजय करके वापस लौटने वाले थे । समस्त पाटलीपुत्र उनके विजयी होकर लौटने के समाचार से हर्षोन्मत्त होगया । समस्त नगर, एक-एक गली, एक-एक मुहल्ला, हाट बाजार सभी ध्वजा-पताकाओं से सुसज्जित किये गये । कहीं शोक और दुःख का नाम न रहा । चारों दिशायें खुशी से फूल उठीं । महाराज के दर्शनों के लिए समस्त नगर आतुर हो उठा । सब बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सड़कों पर, घर और दुकानों की छतों पर जमा हो गये । राजमार्ग में कहीं तिल रखने का स्थान न रहा ।

महाराज संप्रति हाथी पर सवार होकर शहर में पधारे । वायुमंडल गगनभेदी उद्घोषों से गूंज उठा, हर ओर से पुष्प-वर्षा होने लगी । नगर-जनों के मस्तक श्रद्धा और प्रेम से झुकने लगे ।

महाराजा अशोक का अभी कुछ दिन पूर्व ही अवसान हो चुका था । राजा संप्रति सीधे अपनी माता के महल में चले गये । दिग्विजयी पुत्र का स्वागत करने के लिये किस माता का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित न होगा ? महाराजा संप्रति की माता भी पुत्र के आगमन का समाचार सुनकर खुशी से भ्रूम उठी । परन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया, लाखों मनुष्यों का खून बहाकर संप्रति ने चारों दिशाओं में विजय तो पा ली परन्तु इससे उसकी आत्मा का क्या कल्याण हुआ ? इस विचार के आते ही उसका समस्त हर्षोल्लास काफूर होगया ।

राजा संप्रति ने आकर माता के चरणों में सिर झुकाया । परन्तु उसकी माता ने न हूँ कहा, न हाँ, वह बिल्कुल शान्त रही । यह देखकर महाराज ने पूछा—माँ, आप उदास क्यों हैं ? आपका दिग्विजयी पुत्र आपको प्रणाम कर रहा है ।

माता ने उत्तर दिया—बेटा, तुमने संसार के राजाधिराजों पर विजय प्राप्त की है, परन्तु यह सच्ची विजय नहीं है। इसमें सच्चा सुख नहीं है। महाराज संप्रति ने आश्चर्य के साथ पूछा—क्यों मां, दिग्विजयी होने में भी सच्चा सुख नहीं, तो फिर सुख कहाँ है ?

माता ने उत्तर दिया—बेटा, इस विजय में तुमने लाखों मनुष्यों का बध किया है, खून की नदियां बहाई हैं। पाप की गठरी सिर पर रखी है। फिर भला इसमें सुख कहाँ से आया ? तुम्हारी इस विजय से खुशी कैसे हो सकती है ? मैं तो तभी खुश हो सकती हूँ जब संसार में शान्ति की स्थापना करोगे, और अपने भीतर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे ! माता का यह उपदेश संप्रति के अन्तःकरण तक पहुँच गया। उसका एक-एक शब्द उनके हृदय-पटल पर अंकित हो गया।

(३)

एकबार जब महाराजा संप्रति उज्जयनी नगरी में रहते थे, वे महल के खिड़की में बैठे हुए शहर को शोभा देख रहे थे। इसी समय 'जीवंत स्वामी' महवीर प्रतिमा का एक बड़ा जुलूस उस ओर से निकला। उसमें संकड़ों साधु और बालकों के अतिरिक्त आर्य-सुहस्ति नामक एक महान आचार्य भी सम्मिलित थे।

महाराजा संप्रति ने जब आचार्य-आर्य सुहस्ति को देखा तो उन्हें कुछ ऐसा भास प्रतीत होने लगा कि उन्हें मैं कहीं पहले भी देखा है, परन्तु कहाँ देखा है ? यह याद नहीं आ रहा है। यही सोचते-सोचते उन्हें मूर्च्छा आ गई और जाति-स्मरण ज्ञान होगया। उन्होंने उसी दशा में देखा कि वे उनके पूर्वभव के गुरु हैं। यह याद आते ही महाराजा महल से नीचे उतरे और आचार्य के चरणों में प्रणाम करके पूछा—गुरुदेव, आप मुझे पहचानते हैं ? आचार्य ने उत्तर दिया—राजन्, तुम्हें कौन नहीं

पहचानता ? राजा ने कहा, नहीं गुरुदेव, कुछ विशेष पहिचान बताइये । आचार्य तो महाज्ञानी थे, उन्होंने राजा के पूर्वभव को अपने ज्ञान-बल से जान लिया । और कहने लगे-मैं तुम्हें अच्छी तरह पहिचानता हूँ । अपने पूर्वभव की बात मुनो-

“एक बार मैं और आर्यमहागिरि महाराज कौशाम्बी नगरी में विचरते थे । उस समय भयंकर दुष्काल पड़ा । लोगों को पेट भरना मुश्किल होगया, परन्तु हमारे प्रति सबके हृदय में अत्यन्त भक्ति-भाव होने से सब हमें अच्छे-अच्छे भोजन भिक्षा में दिया करते थे । एक दिन एक कंगला भिखारी हमारे एक साधु के पीछे हो लिया और कहने लगा कि-इस भोजन में से थोड़ा मुझे भी दीजिये, मैं कई दिनों का भूखा हूँ । साधु ने उत्तर दिया कि इस विषय में हमारे गुरु जो आज्ञा देंगे, वही हो सकेगा । यह सुनकर वह हमारे पास आया और गिड़-गिड़ाकर भोजन मांगने लगा । हमने उससे कहा-देखो भाई, तुम भी हमारे समान दीक्षा ले लो, तभी इस भिक्षा के अन्न में से तुम्हें दे सकते हैं । उसने सोचा-संसार में रहते हुए भी दुःख से तो पीछा छूट ही नहीं सकता, तब दीक्षा लेकर कष्ट सहन करने में क्या हानि है ? भरपेट भोजन भी मिलेगा, और धर्मध्यान भी होगा ।

यह सोच कर उसने दीक्षा लेने का निश्चय किया । हमने ज्ञान बल से जान लिया कि यह भविष्य में जैनधर्म का महान उद्धार करेगा । अतएव उसे दीक्षा दे दी । उसे कई दिन बाद भोजन मिला था, इसलिए उसने खूब डटकर खाया, और इतना खाया, कि साँस लेना भी मुश्किल होगया । परिणाम यह हुआ कि उसी रात को उसके प्राण-पखेरू इस तन के पिंजरे से उड़ गए । परन्तु वह उसी दिन नया साधु हुआ था, इसलिए बहुत से श्रावक और श्राविकायें उसे वंदन करने के लिए आईं एवं बड़ी-बड़ी साध्वियाँ भी वंदन करने पधारीं । जो पहले कभी उसकी ओर नजर उठाकर भी न देखते थे, वही इसे

बंदन करने लगे, उसकी सेवा करने लगे, यह सब साधु-धर्म का ही प्रभाव था। अतएव मरने के समय उसके हृदय में शुभ भावनाएँ उत्पन्न हुईं। वह सोचने लगा—ओहो, एक दिन के चारित्र्य का क्या यह फल है, तो वर्षों के चारित्र्य का क्या फल होगा? उसने मरते-मरते भी भवोभव में साधु-धर्म के बालन की उत्कट इच्छा की, और जैन धर्म की प्रशंसा करते-करते शरीर छोड़ दिया। राजन्, (कुणाल के पुत्र) तुम वही साधु हो। शुभ भावों से खूब पुण्य संचय किया, उसका यह सुफल मिला है व और आगे के जीवन में भी मिलेगा।

यह सब हाल सुनकर राजा कृत-कृत्य हो गए और कहने लगे—शुभदेव, आपने मेरा अत्यन्त उषकार किया है। आप पूर्वभव में दीक्षा न देते तो इस भव में मुझे यह वैभव कहां से मिलता? अब कृपा करके मुझे और भी कल्याणकारी सन्मार्ग दिखलाइए।

आचार्य आर्य सुहस्ती महाराज ने कहा—तुम जैन धर्म स्वीकार करो। जैन मन्दिर व मूर्तियों का निर्माण कराओ। धर्म का सर्वत्र प्रचार करो। जैन साधुओं की भक्ति करो।

आचार्य के उषदेश से राजा ने जैन धर्म अंगीकार किया और यथा-शक्ति पवित्र जीवन बिताने का निश्चय किया। उसके मन में विचार आया कि समस्त संसार में अहिंसा द्वारा शान्ति की स्थापना करने वाले तीर्थंकरों के कीर्ति स्तंभस्वरूप अथवा उनके संदेश-वाहक जैन मन्दिर तथा उनके उषदेशों का प्रचार करने वाले दीक्षाधारी साधु यदि जगत में प्रचारित हो जाँय तो, कितना अच्छा हो। तब तो असंख्य प्राणियों के रक्त से रंजित यह भूमि स्वर्ग के समान हो जाय। सभी मनुष्य और प्राणीमात्र भाई-भाई के समान प्रेमपूर्वक रहने लगे। उन्होंने ऐसे विचार करते-करते यह प्रतिज्ञा ली कि आज से नित्य प्रति कम से कम एक जैन मन्दिर के बनाने या मरम्मत होने की खबर सुने बिना भोजन नहीं करूँगा। उन्होंने देश-देशान्तरों में जैन मन्दिर

बनाने शुरू किए और अपनी प्रतिज्ञा का नियमपूर्वक पालन करने लगे। कुछ दिन बाद महाराजा संप्रति ने अपने अधीनस्थ राजाओं को बुलाकर कहा, कि मुझे तुम्हारे धन की आवश्यकता नहीं है, यदि तुम मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो तो जैन-धर्म स्वीकार कर लो और ऐसी व्यवस्था करो कि तुम्हारे राज्यों में साधु सुखपूर्वक विचरण कर सकें। इस सुझाव से प्रेरित होकर सैकड़ों राजाओं ने जैन-धर्म स्वीकार कर लिया। अब राजा को भारत-वर्ष के बाहर भी धर्मप्रचार करने का विचार हो आया। वे सोचने लगे कि-विदेशों में धर्मप्रचार तभी हो सकता है कि जब श्रेष्ठ चारित्र्य और उच्च ज्ञान वाले साधु देश-देशान्तरों में फैल जाय। परन्तु बीच में कितने ही ऐसे अनार्य देश हैं, जहाँ के लोग यह जानते ही नहीं कि साधु को किस प्रकार का भोजन दिया जाता है और उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है। ऐसी दशा में साधु सबत्र किस प्रकार विहार कर सकते हैं? सोचते-सोचते राजा को एक युक्ति सूझी। उन्होंने साधु वेषधारी अन्य लोगों को उन देशों में भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर लोगों को अच्छी तरह से सिखला दिया कि साधु के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। उन लोगों ने सबको यह भी समझा दिया कि साधुओं के साथ उचित व्यवहार न होगा तो महाराजा संप्रति कठोर दण्ड देंगे।

इस प्रकार कई वर्षों के प्रयत्न से अनार्य देश वाले भी साधुओं के साथ उचित व्यवहार करना सीख गये। तब एक दिन राजा ने गुरुराज से कहा—‘भगवन्’! साधु लोग अनार्य देशों में क्यों नहीं जाते? उन्होंने उत्तर दिया कि अनार्य देशों में जाने से साधुओं के चरित्र को हानि पहुँचने का भय है। तब राजा ने आग्रह पूर्वक निवेदन किया कि महाराज, आप एकबार साधुओं को उन देशों में भेजकर परीक्षा तो करके देखें कि वहाँ वे लोग कैसा व्यवहार करते हैं।

राजा संप्रति के आग्रह से गुरुराज ने साधुओं को अनार्य देशों

में भेजा। वहाँ जाकर उन्होंने जैनधर्म का खूब प्रचार किया। जगह-जगह चट्टानों-शिलाओं पर जैन धर्म की आज्ञायें खुदवादीं और जगह-जगह अहिंसा की घोषणा करवादी। इससे धर्म प्रचार में किसी प्रकार की भी कठिनाई नहीं रही।

इस प्रकार राजा संप्रति ने भारत में और भारत के बाहर जैन-धर्म का खूब प्रचार किया। कहते हैं कि उन्होंने सवालाख नवीन जैन मन्दिर बनाए। ३६००० मन्दिरों की मरम्मत की। ६५००० (पीतल आदि) प्रतिमायें बनवाईं। देश-देशान्तरों में जैन धर्म का प्रचार कराया। कहा जाता है—उस समय जैनों की संख्या ४० करोड़ हो गई थी।

वे यद्यपि साधु न हो सके, तथापि अपनी पूरी शक्ति से आंशिक संपन्न व्रत (श्रावक धर्म) का पालन करते थे। इस प्रकार श्रावक जीवन बिताते हुए उन्होंने देह त्याग किया।

आज भी लोग मानते हैं कि शत्रुञ्जय, गिरनार, नाडोल आदि बहुत से स्थानों के मन्दिर, उन्हीं के बनवाये हुए हैं। महाराजा संप्रति की बनाई हुई मूर्तियों की चर्चा तो स्थान-स्थान पर मिलती है। मेवाड़ से बूँदी को जाने वाले रास्ते में एक किला भी इन्हीं का बनाया हुआ बतलाया जाता है। बहुतों का यह भी कहना है कि महाराजा अशोक के नाम से प्रसिद्ध शिलालेख (सब या कुछ) भी इन्हीं के खुदवाये हुए हैं।

महाराजा संप्रति का जितना गुणगान किया जाय, उतना ही प्रोढ़ा है। संसार में शान्ति और प्रेम की स्थापना करने वाले जैन-धर्म का प्रचार करने के लिये ऐसे महापुरुष जितने ही अधिक हों, इतना ही अच्छा है।

१४ महाराजा कुमार-पाल

(१)

सुन्दर हर-भरा गुजरात देश, जिस पर महाप्रतापी सिद्धराज जयसिंह राज्य करते थे। उन्हें और तो सब प्रकार का सुख था, किन्तु एक बात का बड़ा दुःख था। वह यह, कि उनके कोई सन्तान न थी। वे चिन्ता करने लगे, कि ऐसा फला-फूला गुजरात का राज्य किसके हाथ में जावेगा ? उन्होंने ज्योतिषी को बुलवाया और ज्योतिष दिखलाया। ज्योतिषी ने कहा-कि “महाराज ! आपकी राज-गादी का उपभोग कुमारपाल करेंगे।”

यह सुनकर सिद्धराज बड़े दुःखी हुए। वे मन में विचारने लगे, कि—“कुमार पाल हल्के कुल में पैदा हुआ है, अतः किसी भी तरह हो पर उसे गादी पर न बैठने देना चाहिये। वह तभी तो गादी पर बैठेगा, जब कि वह जीवित रहेगा ? तो मैं उसे क्यों न मरवा डालूँ ? यों सोचकर, वे कुमारपाल को मार डालने का मौका ढूँढ़ने लगे।

(२)

कुमार पाल देथली के स्वामी त्रिभुवनपाल के पुत्र थे। उनकी स्त्री का नाम था-भोपालदे। उनके दो भाई थे, जिनमें एक का नाम महिपाल और दूसरे का नाम कीर्तिपाल था। दो बहिनें थीं, जिनमें एक प्रमिलादेवी का विवाह, सिद्धराज के एक सामन्त कृष्णदेव के साथ और देवलदेवी का सांभर के राजा अर्णोराज के साथ हुआ था।

कुमार पाल को जब यह बात मालूम हुई कि महाराजा सिद्धराज की मुझ पर क्रूर-दृष्टि है, और वे मुझे मार डालने का मौका

ढूँढ़ रहे हैं। तब उन्होंने परदेश जाने का विचार किया। इतने ही में सिद्धराज ने उसके पिता का बध करवा डाला।

इस हत्या का समाचार पाते ही कुमारपाल समझ गये, कि अब मेरी बारी है। अतः वे अपने परिवार को वहीं छोड़कर, रातों रात भाग चले।

कुमारपाल बाबाजी (सन्यासी) का वेश करके एक स्थान से दूसरे स्थानमें भ्रमण करने लगे। किसी दिन खाने को मिल जाता और किसी दिन भूखे ही रहना पड़ता यों करते-करते इसी वेश में एक बार वे पाटण आये और वहाँ एक महादेव के मन्दिर में पुजारी नियुक्त हो गये।

राजा को जब इस बात की कुछ खबर लगी, तो उसने अपने पिता के श्राद्ध का बहाना करके, सब पुजारियों को भोजन करने बुलाया। उधर कुमारपाल को भी यह बात मालूम हो गई कि मुझे मार डालने के लिये ही यह जाल रचा गया है। अतः उल्टी (कै) का बहाना बनाकर वे भोजनशाला से बाहर आगये। वहाँ से वे केवल पहनी हुई धोती लिये हुए जितना भागा गया तेजी से भागने लगे। सिर नंगा, पैर भी नंगे, शरीर खुला हुआ और ऊपर से दोपहर की गर्मी। किन्तु वे कर ही क्या सकते थे ? यदि भागने में जरा भी देर हो जाय तो सिद्धराज के सिपाही वहाँ आ पहुँचे और उन्हें अकाल मृत्यु से मरना पड़े।

सिद्धराज को जब यह बात मालूम हुई कि कुमारपाल हाथ से निकल गये हैं, तो उन्हें पकड़ लाने के लिये कुछ घुड़सवार भेजे।

कुमारपाल जब भागते-भागते दो एक कोस दूर निकल गये, तो पीछे से घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दी। उन्होंने विचारा कि—“अब दौड़ने से काम नहीं चलेगा, कहीं थोड़ी देर के लिये छिपे

रहना चाहिये। यों सोचकर उन्होंने इधर-उधर देखा, तो भीमसिंह नामक एक किसान कांटों की बाड़ लगाता हुआ दिखाई दिया। कुमारपाल उसीके पास गये, और उससे अपने प्राण बचाने को कहा। उस किसान को कुमारपाल पर दया आगई, अतः उसने इन्हें कांटों के ढेर के नीचे छिपा दिया।

थोड़ी ही देर में पैरों के निशान ढूँढते हुए राजा के सिपाही वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भाले मार मार कर कांटों का ढेर ढूँढलिया, किन्तु कुछ भी पता न लगा। अतः ढूँढना छोड़ वे वापस घर लौट गये।

रात के समय भीमसिंह ने कुमारपाल को बाहर निकाला। उनका शरीर कांटों के लगने से लहू-लुहान हो गया था। जिसके कारण वेदना अपार होती थी, किन्तु यहाँ ठहरने का समय न था। अतः साधारण उपचार कर उन्होंने बड़े सवेरे उठकर फिर भागना शुरू कर दिया। भूखे पेट और दर्द पूर्ण शरीर से भागते-भागते, वे खूब थक गये। दोपहर के समय वे एक झाड़ के नीचे आराम करने बैठे। वहाँ उन्होंने एक बड़ा विचित्र खेल देखा—एक चूहा एक के बाद एक करके इक्कीस रुपये एक बिल में से बाहर लाया और फिर वापस उसी तरह ले जाने लगा। ज्योंही वह एक रुपया लेकर बिल में गया, त्योंही बीस रुपये कुमारपाल ने उठा लिये। चूहे ने बाहर आकर देखा कि रुपये नहीं हैं, तो वह सिर पटक-पटक छटपटा कर वहीं मर गया, यह दृश्य देखकर कुमारपाल बड़े दुखी हुए और विचारने लगे कि—“ओहो ! इस प्राणी को भी धन पर कितना मोह है ?” वह धन लेकर वे आगे चले गये। यह तीसरा दिन था, किन्तु अब तक उन्हें खाने को कुछ भी न मिला था। वे इस समय थककर चूर-चूर हो रहे थे। ऐसे ही समय में श्रीदेवी नामक एक महिला बैलगाड़ी में बैठकर अपनी ससुराल से पीहर को जा रही थी। कुमारपाल को दुखी देखकर

उसे दया आई, अतः उसने इन्हें खाने को दिया। इस भोजन से कुमारपाल को कुछ शान्ति मिली। उन्होंने उस बहिन से कहा कि—
“बहिन जी ! मैं कभी भी आपका उपकार न भूलूंगा।”

यहां से चलकर कुमारपाल अपने ग्राम देवली को गये। सिद्धराज को यह मालूम होते ही उन्होंने अपनी सेना भेजी। इधर कुमारपाल को भी सेना के आने की बात मालूम होगई, अतः वे अपने लिए छिपने की जगह ढूँढ़ने लगे। उस समय सज्जन नामक कुम्हार ने उन्हें अपने आँवे में छिपा दिया। राजा की फौज को कुमारपाल का पता न लंगा, अतः वह निराश होकर वापिस लौट गई।
“जाको राखे साइयां, मारि सके ना कोय।”

(४)

कुमारपाल, यहां से अपने कुटुम्ब को मालवे की तरफ भेजकर खुद परदेश में घूमने निकल गये। वहाँ बोंसिरी नामक ब्राह्मण से मित्रता होगई। वह ब्राह्मण गांव में से भिक्षा मांगकर लाता और कुमारपाल को खिलाता था। किन्तु यह सुविधा भी अधिक दिनों तक नहीं रही। कुछ दिनों बाद बोंसिरी का भी साथ छूट गया, जिससे कुमारपाल को कष्ट होने लगा। वे घूमते-घूमते फटेहाल होकर भूख की पीड़ा सहते और कष्टों से परेशान होते हुए खम्भात पहुँचे।

वहाँ श्री हेमचन्द्राचार्य नामक प्रसिद्ध जैनाचार्य थे। उनका ज्ञान अगाध और चारित्र्य बड़ा निर्मल था। उन्होंने कुमारपाल के लक्षणों को देखकर जान लिया कि भविष्य में यह गुजरात का राजा होगा। अतः उन्होंने खम्भात के मन्त्री 'उदायन' के यहां कुमारपाल को आश्रय दिलवाया।

यह हाल मालूम होते ही सिद्धराज का लश्कर कुमारपाल को ढूँढ़ने आ पहुँचा।

सेना ने वहाँ पहुँचकर उदायन के मकान की तलाशी लेनी शुरू की, अतः कुमारपाल वहाँ से निकल कर उषासरे में आये और पुस्तकों के भंडार में छिप गये। सेना के सिपाही उपाश्रय में भी आ धमके। किन्तु कुमारपाल का पता न लगा, अतः वापिस लौट गये।

ज्ञानी गुरु श्री हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल से कहा, कि—“अब तुम्हारे दुःख के दिन अविक नहीं हैं, थोड़े ही दिनों के बाद तुम्हें गुजरात का राज्य मिल जायगा।” कुमारपाल अपनी दशा का ध्यान करके बोला, कि—“गुरु महाराज ! यह बात कैसे मानी जा सकती है ?” तब आचार्य महाराज ने उन्हें ऐसा ही होने का विश्वास दिलाया, जिसे सुनकर कुमारपाल ने कहा कि—“यदि आपका वचन सत्य हो जावेगा, तो मैं जैन धर्म का फालन करूँगा।” इसके बाद उदायन मन्त्री से कुछ राह खचं लेकर कुमारपाल दक्षिण की तरफ चल दिये।

इस तरह बड़ी दूर तक भ्रमण करके कुमारपाल अपने कुटुम्ब से मिलने मालवा को चले गये। वहाँ पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि सिद्धराज मृत्यु शैया पर पड़े हैं। अतः वे अपने कुटुम्ब को लेकर गुजरात में आये।

(५)

सिद्धराज मृत्यु-शैया पर पड़े थे। वहाँ पड़े-पड़े उन्होंने उदायन मन्त्री के पुत्र बाहड़ को गोद लिया। वे यह व्यवस्था कर रहे थे कि राज्य कुमारपाल को न मिलकर बाहड़ को मिले। किन्तु इसी बीच में उनकी मृत्यु होगई। यह समाचार सुनते ही कुमारपाल पाटण आये। राज-सभा कुमारपाल की योग्यता जानती थी, अतः उसने इन्हें ही राजगद्दी पर बैठा दिया। कुमारपाल जिस समय गद्दी पर बैठे, उस समय उनकी अवस्था ५० वर्ष की थी। भाग्य ने उनको आखिर राजा बना ही दिया, सिद्धराज की कुछ भी न चली।

कुमारपाल को गद्दी मिलते ही उन्होंने अपने सब उपकारी मनुष्यों को याद किया। भोपालदे को अपनी पटरानी बनाई, भीमसिंह को अपना शरीर रक्षक-बनाया। श्रीदेवी के हाथ से अपना राज्य-तिलक करवाया, और ढोलका गांव इन्हें इनाम में दे दिया। सज्जन को सात-सौ गांवों का सूबेदार बनाया और देश का हाकिम बना दिया। उदयन मन्त्री को अपना प्रधान बनाया। और उनके पुत्र वागभट्ट को नायबदीवान नियुक्त किया। एवं श्री हेमचन्द्राचार्य को अपने गुरु के स्थान पर स्थापित किया।

(६)

कुमारपाल के गद्दी पर बैठने के बाद उनके अधीन राजाओं ने यह मान लिया कि वे निर्बल हैं। अतः किसी ने कर देने से इन्कार कर दिया, और किसी-किसी ने तो उपद्रव करना शुरू कर दिया। किन्तु कुमारपाल बड़े बहादुर थे। उन्होंने अपनी मजबूत सेना द्वारा अजमेर के अर्णोराज को अपने वश में किया। मालवे के बल्लालों को अपना मातहत बनाया और कोंकण के मलिकार्जुन को भी हराकर अपने वश में कर लिया। इसी तरह सोरठ के समरसिंह को भी अपने अधीन कर लिया और दूसरे अनेक छोटे-मोटे राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया। इस तरह कुमारपाल ने १८ देशों में अपनी दुहाई फिरवाई।

कुमारपाल के राज्य की सीमा, उत्तर में पंजाब तक, दक्षिण में विन्ध्याचल तक, पूर्व में गंगा नदी तक और पश्चिम में सिन्धुनदी तक थी। इनके बराबर राज्य विस्तार गुजरात में किसी भी राजा ने नहीं किया।

कुमारपाल अपने गुरु श्री हेमचन्द्राचार्य की बड़ी भाक्ति करते और प्रत्येक कार्य में उनकी सलाह लेते थे। गुरुराज भी ऐसे

थे, कि राजा को ठीक-ठीक सलाह देते और वही करते, जिससे राजा एवं प्रजा का कल्याण हो ।

कुमारपाल ने इन्हीं गुरुराज के कहने से, बांझ (निपुत्री) मनुष्यों का धन लेना बन्द कर दिया । उसकी केवल लगान की ही क्षामदनी प्रतिवर्ष ७२ लाख रुपये की थी । अपने शासन के अन्तर्गत अठारहों देशों में जीव-हिंसा न करने का हुक्म दे दिया । सोमनाथ महादेव मन्दिर को ठीक करवाया और दूसरे अनेक छोटे-बड़े मन्दिर तथा प्रजा के लिए उपयोगी स्थान बनवाये, सबका हित साधन किया ।

तारंगा, ईडर, धंधुका वगैरह के मन्दिर इन्हीं के बनवाये हुए हैं ।

कुमारपाल के राज्य में दुष्काल का कहीं नाम भी न था, और न चोर डाकुओं का भय ही था । सब लोग आनन्द पूर्वक रहते थे । अठारहों राज्य आपस में मेल करके रहते और शिकार की बन्दी होने के कारण पशु-पक्षी भी निर्भय होकर विचरते थे ।

कुमारपाल दिनों-दिन धर्मा राधना द्वारा अपना जीवन पवित्र करने लगे, और अन्त में उन्होंने अपने मन, वचन तथा काया को अत्यन्त पवित्र बना लिया, जिससे वे "राजर्षि" कहे जाने लगे । उनके किये हुए शुभ कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१४०० जैन मन्दिर बनवाये, १६०० पुराने टूटे-फूटे मन्दिरों का उद्धार करवाया । सात बार तीर्थ यात्रा की, जिसमें पहली यात्रा में नौलखी पूजा की । निर्वंश मरने वालों का धन लेना बन्द किया, और प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपया शुभ कार्यों में खर्च किया । २१ ज्ञान-भंडार स्थापित किये और लाखों प्रतियाँ लिखवाईं । ७२ सामन्तों पर अपनी आज्ञा चलाई और अठारह देशों में पूणरूपेण अहिंसा पलवाई ।

तीस वर्ष तक राजर्षि कुमारपाल ने राज्य किया । और इतने समय में सब जगह सुख-शान्ति फैलाई तथा प्रजा की बड़ी तरक्की की । कुछ दिनों के बाद, उनके गुरुराज हेमचन्द्रा-पूरि की देह छूट गई, अतः वे बड़े दुःखी हुए । इस शोक का उनके शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ा । अब उनकी अवस्था भी ८१ वर्ष की हो चुकी थी, अतः वे भी मृत्यु को प्राप्त हुए ।

कुमारपाल के समान राजा और श्री हेमचन्द्राचार्य के समान गुरु उस जमाने में और कोई नहीं हुए । इन दोनों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है ।

आचार्य हेमचन्द्र पूरि राजा सिद्धराज द्वारा भी सम्मानित थे । सिद्धराज के अनुरोध से ही उन्होंने 'सिद्धहेम व्याकरण' नामक महान सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण बनाया । महाराजा कुमारपाल के लिये उन्होंने 'योगशास्त्र' की रचना की, और भी अनेकों विषयों के महत्वपूर्ण ग्रन्थ उन्होंने बनाये हैं । 'कलिकाल सर्वज्ञ' उनकी विशिष्ट उपाधि थी जो उनकी एक अद्वितीय विद्वत्ता की सूचक है । आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल के सम्बन्ध में अनेकों ग्रन्थ रचे गये हैं । यहां तो बहुत ही संक्षेप में लिखा गया है ।

जैन धर्म का वह स्वर्ण युग था । युग प्रधान दादा श्री जिनादत्त पूरि आदि अनेकों प्रभावशाली जैनाचार्य उसी समय में हुए हैं । अनेकों मन्दिर-मूर्तियां बनीं । खूब साहित्य रचा गया । लाखों लोग जैनी बने । जन-जन में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ा । अहिंसा धर्म खूब फला-फूला ।

१५ मन्त्री श्री विमलशाह

(१)

गुजरात के चावड़ा वंशीय प्रथम राजा वनराज हुए हैं, जिनके सेनापति नामक एक श्रावक थे। वे बड़े प्रतापी और बहादुर थे। उनकी नस-नस में क्षत्रिय का रक्त बहता था। उनके 'वीर' नामक एक पुत्र हुआ, वह भी बड़ा साहसी और शूरवीर तथा धर्म में बड़ा प्रेम रखने वाला था।

इस लड़के का विवाह वीरमती नामक एक कन्या से हुआ। इसी वीरमती के उदर से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम रखा गया—विमल।

विमल बत्तीस लक्षणों से युक्त बालक था। वह दूज के चन्द्रमा की तरह दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। जब वह पांच वर्ष का होगया तो पिता ने उसे पाठशाला में पढ़ने को भेजा। वहां थोड़े ही दिनों, में खूब पढ़ लिखकर, वह अपने घर को वापस लौट आया। अब पिता ने समझ लिया कि पुत्र योग्य उमर का हो चुका है, अतः उन्होंने घर का सारा भार विमल पर डाल दिया, और स्वयं दीक्षा लेकर चल दिये। चलते समय उन्होंने विमल को शिक्षा दी, कि "बेटा! ईमानदार ब निडर रहना और जिन भगवान की आज्ञा अपने सिर चढ़ाकर धर्ममय जीवन ब्रिताना।" विमल के जीवन पर इस उपदेश का बड़ा प्रभाव पड़ा।

(२)

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों विमल का सभी दिशाओं में अधिकाधिक विकास होता गया। उसके शत्रु यह

देखकर मन ही मन खूब जलते तथा डाह करते थे। माता वीरमती को जब यह बात मालूम हुई तो वे विचारने लगे, कि—“विमल के शत्रु इस शहर में बहुत हैं, अतः जबतक वह पूरा शक्तिशाली न हो जाय, तबतक मुझे कहीं दूसरी जगह जाकर रहना चाहिये।” यों सोचकर, वे अपने साथ विमल को ले अपने पीहर को चली गईं।

उनके पीहर में बड़ी गरीबी थी। यहाँ तक कि घर के बड़े मनुष्य भी मिहनत-मजदूरी करते, तभी खाने का गुजर चलता था। इसी कारण वीरमती के भाई को वीरमती तथा विमल का माना अच्छा न मालूम हुआ, किन्तु बहिन को नहीं आने देने की कंसे नहीं जा सकती थी? अतः उनका आदर सत्कार करना ही पड़ा। वीरमती तथा विमल वहीं रहने लगे।

(३)

पाटण के वीर मन्त्री का पुत्र विमल, अब गरीबी में पलने लगा। वह किसी समय खेत में जाता और मामा की खेती के काम मदद करती। कभी घोड़ी, बछेरा अथवा गाय भैंस लेकर जंगल जाता और वहाँ उन्हें घास चराता। उसे न तो ऐसा काम करने इनकार ही था और न कुछ अफसोस ही होता, उलटा इस काम उसे बड़ा आनन्द आता।

जब वह जंगल में जाता तो तीरकमान चलाता, घोड़े पर वारी करता, झाड़ों पर चढ़ता और तालाब में तैरता था। दिन र इसी तरह आनन्द लूटकर शाम को वह अपने घर लौटता।

इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के कारण विमल का रीर बड़ा हृष्ट-पुष्ट होगया। वाण-विद्या में तो यह अद्वितीय। धीरे-धीरे उसकी वाण-विद्या की प्रशंसा सब जगह होने लगी।

(४)

पटण के नगर—सेठ श्रीदत्त के श्रीदेवी नामक एक जवान कन्या थी। इस कन्या के लिये वे योग्य वर की तलाश कर रहे थे। उन्होंने अनेकों स्थान देखे, किन्तु कहीं भी वर पसन्द न पड़ा। इतने ही में उन्होंने विमल की प्रशंसा सुनी, अतः उसी के साथ अपनी कन्या की सगाई कर दी।

विमल के मामा अब विचारने लगे, कि—“इसके विवाह का खर्च कहां से आयेगा ?”

वीरमती सोचने लगी कि—‘ विमल का विवाह मेरे परिवार को शोभा दे, वैसा धूम-धाम से करना चाहिये। यह मन्त्री का पौत्र है।’ किन्तु अपने भाई की स्थिति ध्यान में थी, अतः उन्होंने निश्चय किया, कि—“जब तक काफी धन न मिल जाय, तब तक विमल का विवाह न करूँगी।” फिर विमल को बुलाकर उससे कहा, कि—बेटा ! जब मुझे धन मिलेगा, तभी मैं तेरा विवाह करूँगी।” विमल ने शान्तिपूर्वक यह सुन लिया।

दूसरे दिन ढोरों को लेकर विमल जंगल में गया। वहां एक झाड़ के नीचे बैठकर वह चिन्ता करने लगा, कि—“अब मुझे धन प्राप्त करना ही पड़ेगा। क्या करूं ? मुझे किस तरह धन प्राप्त हो सकता है ?” यों विचार करते-करते उसने अपने हाथ की लकड़ी को ज्योंही पास ही के दरार में घुसेड़ी, त्यों ही धम-धम ढेले गिर पड़े। विमल उन ढेलों को दूर करके देखता है, तो भीतर सोने का एक घड़ा दिखाई दिया। यह देखते ही उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं उसका भाग्य चमक उठा। वह घड़े को घर लाया और वीरमती के चरणों में उसे रख दिया। वीरमती यह देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और थोड़े

दिनों में ही उसने विमल के विवाह की तिथि निश्चित करवाई। उसके बाद परिवार को शोभा देने योग्य खूब धूमधाम से विमल का विवाह हुआ। पत्नी श्रीदेवी घर आई। विमल और श्रीदेवी, दोनों की समान जोड़ी थी। कोई भी एक दूसरे से कम न था।

विमल अब ऐसा नहीं रह गया था, कि उसे शत्रु से डरना पड़े। अतः वह मामा का घर छोड़कर पाटण आये। वहां आकर उसने अपना भाग्य अजमाना शुरू किया।

एक दिन वह बाजार में होकर जा रहा था। वहां राजा के सिपाही लोग निशाने बाजी कर रहे थे। अच्छे-अच्छे योद्धाओं ने निशान ताका, किन्तु कोई भी ठीक न मार सका। यह देखकर विमल हँसने लगा और जोर से बोला कि—“वाह ! सैनिक लोग हैं तो बड़े बहादुर, महाराजा भीमदेव का जाता हुआ राज्य बचा लेने के काबिल हैं।” यह सुनकर सैनिक लोग बहुत चिड़े। इसी समय महाराजा भीमदेव भी वहीं आ पहुँचे। उन्होंने भी निशाना मारा, किन्तु वे भी चूक गये। अतः विमल ने हंसकर कहा—“मालूम होता है, यहाँ सब नौसिखिये ही नौसिखिये इकट्ठे हो रहे हैं। इन लोगों के हाथ में राज्य की बागडोर है, किन्तु ये क्या शासन कर सकते हैं ?”

ज्योंही भीमदेव के कान में ये शब्द पड़े, त्योंही वे चौंक उठे। उन्होंने विमल से पूछा कि—“सेठ ! क्या तुम भी वाण विद्या जानते हो ? यदि जानते हो तो इस तरफ आओ।” विमल ने उत्तर दिया कि—“वाण विद्या तो आपके समान क्षत्रिय लोग ही जानें, हम तो व्यापारी कहे जाते हैं। हमको भला क्यों आने लगी ?

यह व्यंग सुनकर भीमदेव जान गये, कि यह मनुष्य अवश्य कोई बड़ा धनुर्धर है, इसकी वाण विद्या देखनी चाहिये, कि वह उसमें

कितना निपुण है। यों सोचकर उन्होंने विमल से कहा, कि—“सेठ विद्या तो जो भी प्राप्त करलें, उसकी है। तुम्हें यदि वाण-विद्या आती हो तो चमत्कार दिखाओ।” विमल ने कहा, कि—“यदि आपको वाण विद्या देखनी ही हो, तो एक बालक को जमीन पर सुला दें, और उसके पेट पर नागर बेल के एक-सौ-आठ पान रखवा दें। इन पानों में आप जितने भी कहेंगे, उतने ही पान, मैं वाण छेद दूँगा और ऐसा करते हुए बालक को जरा भी चोट न पहुँचेगी। आप जितना कहेंगे, उससे यदि एक भी पान कम ज्यादा हो जाय तो आपको तलवार है मेरा सिर। अथवा यदि आप कहें तो दही मथती हुई स्त्री के कान का हिलता हुआ, आभूषण छेद दूँ। ऐसा करते समय यदि उस स्त्री के कान को जरा भी चोट पहुँचे, तो आपको जो भी दण्ड उचित प्रतीत हो, वह दे दीजियेगा।”

यों कहकर विमल ने अपनी वाण—विद्या बतलाई, जिसे देखकर राजा भीमदेव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने विमल को पांचसौ घोड़े दिये और दंडनायक (सेनापति) की पदवी दी।

विमल बड़ा चतुर था। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि सेना को किस तरह अपने कब्जे में रखना चाहिये और अपनी प्रतिष्ठा तथा अपना प्रभाव किस तरह बढ़ाना चाहिये। उसका बड़ा रौब दबदबा था। गुजरात के सब छोटे-छोटे राजा लोग उससे भय खाते थे। थोड़े ही समय में विमल अपनी चतुराई से दण्डनायक से महामन्त्री हो गया।

अब वह बड़ी शान से रहने लगा। उसने अपने रहने के लिये राजा से भी अधिक अच्छा महल बनवाया, और एक सुन्दर गृह मन्दिर बनवाया। मकान और मन्दिर के चारों तरफ एक सुन्दर कोट तैयार करवाया। देश-विदेश से उत्तम-उत्तम हाथी, घोड़े भँगवाये और अपने लड़ने वाले योद्धाओं की वृद्धि की।

जिनेश्वरदेव के प्रति विमल की अपार भक्ति थी। वे अपनी आँगूठी में जिनेश्वर की छोटी सी तसवीर रखते थे, जिससे किसी को वन्दन करने पर पहला वन्दन उन्हीं का होता था।

विमल की यह उन्नति देखकर उसके दुश्मन लोग राजा भीमदेव को उसके विरुद्ध उभारने लगे उन्होंने कहा—कि महाराज ! विमलशाह आपका राज्य लेना चाहते हैं। उन्होंने बड़ी भारी सेना तैयार की है, और वे जिनेश्वर देव के अतिरिक्त किसी को भी नहीं नमते हैं। इस तरह खूब उभारे जाने पर राजा भीमदेव को ऐसा जान पड़ा कि यह बात सच्ची है। अतः उन्होंने विमल शाह के घर को देखने की इच्छा से एक दिन कहा कि मन्त्री जी, मैंने आपका घर कभी नहीं देखा, अतः उसे देखने की बड़ी इच्छा है। विमल शाह के मन में तो कुछ कपट था ही नहीं इसलिये वे बोले कि—“स्वामी ! वह घर आपका ही है। आप पधारिये और भोजन भी वहीं चलकर कीजियेगा।”

राजा अपने साथ थोड़े से घुड़सवार और पैदल सिपाही लेकर विमलशाह के घर गये। वहाँ पहुँचकर जब उन्होंने मन्दिर की बनावट देखी, तो चकित रह गये, और जब महल के दूसरे भाग की बनावट देखी तो अपने दाँतों तले उंगली दबाली। जब विमल शाह का मजबूत किला देखा तो उनके हृदय की शंका, उन्हें सच्ची जान पड़ने लगी। वे मन में सोचने लगे कि—“अहो ! इस विमल के पास इतनी अधिक ऋद्धि-समृद्धि है ? मेरा बैभव तो उसके किस गिनती में है ?” यों सोचते हुए, राजा भोजन करके वापस चले आये।

अब राजा अपने और मन्त्रियों के साथ सलाह करने लगे, कि विमल को यहां से किस तरह अलग करना चाहिये ? विचार करते-करते एक मन्त्री ने यह तरकीब सुझाई कि—“महाराज !

जब कोई गुड़ देने से मरता हों, तो जहर देकर मारने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कीजिये, कि ठीक भोजन के समय शेर को छुडवा दीजिये । इससे सारे शहर में निश्चित ही त्रास फैल जावेगा । इसी समय विमल को उत्तेजित कर दीजियेगा, अतः वह शान्त न बैठा रह सकेगा, और शेर को पकड़ने के लिये जायगा । वहाँ, उसका काम अपने आप तमाम हो जायगा । राजा को यह विचार बहुत पसन्द आया ।

दूसरे दिन राजा ने सब तैयारी ठीक करवा दी । ज्यों ही विमलशाह आये और राजा को नमन करके बातें करने लगे, ठीक त्योंही पिंजरे से शेर बाहर निकाल दिया गया । शेर के छूटने से सारे शहर में हा-हाकार मच गया । एक मनुष्य ने, जहाँ राजा और विमलशाह बैठे थे, वहाँ आकर समाचार दिया, कि- 'महाराज ! शेर छूट गया है और सारे शहर में उसके कारण त्रास फैल रहा है ।' यह सुनकर विमलशाह एक दम खड़े हुए और बाघ को वश में करने के लिए तैयार हो गए । राजा तो यही चाहते ही थे, अतः वे कुछ न बोले ।

शहर के चारों तरफ सन्नाटा छा रहा था । जिसे जिधर मौका मिला, वह उधर ही भाग कर घर में घुस गया । वह सिंह अकेले ही शहर में दौड़ता फिर रहा था, कि इतने ही में उसे विमलशाह दिखाई दिए । इन्हें देखते ही शेर दौड़ा और झपाटा मार कर इनके सामने आ गया । विमलशाह तो उसकी खबर लेने को तैयार ही थे । अतः एक छलांग मार कर उन्होंने उसके दोनों कान जा पकड़े । बाघ ने छूटने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु विमलशाह के हाथ ऐसे कमजोर न थे, कि उनसे सिंह के कान छूट जाते । अन्त में उस सिंह को लेकर उन्होंने फिर पींजरे में बंद कर दिया ।

सारे शहर में विमलशाह की जय बोली जाने लगी । राजा भीमदेव तथा उसके मन्त्री लोग बड़े निराश हुये । उन्होंने तो विमलशाह की जान लेनी चाही थी, किन्तु उल्टी उसकी कीर्ति में वृद्धि हो गयी । अब क्या करें ? अन्त में उन्होंने एक दूसरा उपाय सोच निकाला, कि राजकीय मल्ल से विमलशाह को कुस्ती लड़वाया जाय, और वहां उसका काम तमाम करवा दिया जाय । राजा ने मल्ल को बुलवाकर सब अच्छी तरह से समझा दिया । थोड़े दिन बीतने पर, एक दिन राजा ने विमलशाह से कहा कि—“मन्त्रीजी, यह राजकीय मल्ल अपने बल का बड़ा अभिमान करता है, अतः इसकी एक दिन परीक्षा तो करो ।”

मल्ल के साथ विमलशाह की कुश्ती हुई । कुश्ती के अनेक दौंव खेले गए, जिसमें विमलशाह ने मल्ल को बड़ी तेजी से पटक कर विजय प्राप्त की । सब दर्शकों के मुँह से वाह-वाह की ध्वनि निकल पड़ी ।

राजा और उसके मन्त्री-लोग अब अधिक चिन्ता करने लगे, कि विमल में दैवी शक्ति है, जिससे वह किसी का मारा नहीं मर सकता । अब कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे वह यहाँ से चला जाय । इसके बाद उन्होंने निश्चय किया कि—“उसके दादा के समय का ५६ करोड़ रुपया लेना (पावना) निकाल कर उससे मांगा जाय । यदि वह अपना कर्ज अदा करना स्वीकार करेगा तो भिखारी हो जायगा, और यदि न देना चाहेगा, तो राज्य छोड़कर चला जावेगा ।”

दूसरे दिन विमलशाह जब दरबार में गए तो इन्हें देखकर राजा भीमदेव इनकी तरफ पीठ करके बैठ गए । विमलशाह ने मन्त्रियों से इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बतलाया कि—राजा को हिसाब के बारे में गुस्सा आ रहा है । आप या तो आपके खाते में

बाकी निकलते हुये ५६ करोड़ रुपये दे दीजिये या नया ऋण स्वीकृति पत्र लिख दीजिये ।”

यह सुनकर, मन्त्री विमलशाह समझ गए, कि राजा कच्चे कान के हैं। वे दूसरों के बहकाने में लगे हैं। अतः ये मेरे विरुद्ध कोई भी कार्यवाही करें, उससे पहले ही उचित है कि मैं स्वयं ही चला जाऊँ ।

यों सोचकर वहाँ से चलने की तैयारी की। सोलह सौ ऊटों पर सोना आदि सामान भरा और हाथी, ऊँट तथा रथ तैयार करवाये। पांच हजार घोड़े तथा रथ तैयार करवाये। पांच हजार घोड़े तथा दस हजार पैदल अपने साथ लिए। फिर भीमदेव से आज्ञा लेने गए। वहाँ से विदा होते समय, उन्होंने राजा से कहा कि— “महाराज ! आपने मुझे जैसी परेशानी में डाला है वैसी परेशानी मैं कृपा करके और किसी को मत डालियेगा ।”

विमलशाह मन्त्री अपना वैभव साथ लेकर आबू की तरफ चले। उन दिनों आबू की तलहटी में चन्द्रावती नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजाने जब यह बात सुनी, कि विमल मन्त्री अपनी सेना सहित लेकर आ रहे हैं, तो वह नगर छोड़कर चला गया। विमल-मन्त्री अब वहाँ भीमदेव के सेनापति की तरह काम करने लगे।

यहाँ रहते हुए, उन्होंने बहुत सी विजयें प्राप्त कीं। सिन्धदेश का राजा पंडिया बड़ा घमंडी हो गया था, अतः उसे बुरी तरह हरा दिया। परमार घंघुगदेव को, जो भीमदेव की आधीनता नहीं स्वीकार करता था—भीमदेव की महत्ता मानने को विवश किया।

विमलशाह ने अपने पराक्रम से विजय प्राप्त की और दोहाई राजा भीमदेव की फिरवाई। यह मालूम होने पर भीमदेव समझ

गये, कि विमल मन्त्री को अलग करके मैंने बड़ी भारी भूल की है । उन्हें इसके लिए बड़ा पश्चाताप हुआ ।

चारों तरफ अपना दबदबा जमाकर, विमलशाह ने चन्द्रावती में राजगद्दी ग्रहण की । इस समय पर भीमदेव ने अपनी तरफ से छत्र तथा चंवर भेट में भेजे । विमलशाह ने भी अपने मन से क्रोध को दूर करके ये चीजें स्वीकार करलीं ।

राजा हो जाने के बाद विमलशाह एक दिन महल की अट्टारी पर चढ़कर नगर देखने लगे किन्तु उन्हें चन्द्रावती नगर कुछ दर्शनीय मालूम नहीं हुआ । अतः उन्होंने उसको फिर से बसाने का निश्चय किया ।

चन्द्रावती नगर फिर से बसाया गया । उसके बाजार सीधे तथा सुन्दर तैयार करवाये गये और बीच में विशाल चौक तथा दर्शनीय स्थान बनाये गये । नगर में सुन्दर नकाशोदार अनेक पक्के जैन-मन्दिर बनवाये गये । परमशान्ति के धाम, उपाश्रय बनाये गये तथा वावड़ी कुए, एवं तालाब भी काफी संख्या में तैयार हो गये ।

इस तरह विमलशाह सब प्रकार की सांसारिक-सम्पत्ति प्राप्त करके, आनन्द करने लगे । इतने ही में एकबार श्री धर्मघोष सूरि नामक आचार्य वहां पधारे, उन्होंने जिन भक्ति का उपदेश दिया, तथा धर्म का असली मर्म समझाया । फिर उन्होंने विमलशाह की तरफ लक्ष्य करके कहा कि—“विमलशाह, तुमने अपना माग जीवन, धन तथा सत्ता प्राप्त करने में ही बिता दिया है अतः अब कुछ धर्म-कार्य भी करो और कुछ परलोक सुधारने की भी पुण्य सामग्री एकत्रित करो ।” विमलशाह को यह बात ठीक मालूम हुई । उन्हें अपने जीवन में की हुई अनेक भयंकर लड़ाइयों का स्मरण हो आया, जिसके कारण उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ । अन्त में वे गद्-गद् स्वर में

बोले, कि-गुरुदेव, आप जो भी आज्ञा दें, वह करने को मैं तैयार हूँ। गुरुजी ने कहा, कि-“आबू के समान सुन्दर पहाड़ पर एक भी जैन-मन्दिर नहीं है।” अतः वहा भव्य जैन मन्दिर तैयार करवाओ।” विमलशाह ने यह बात स्वीकार कर ली।

विमलशाह मन्दिर बनवाने के लिए कुटुम्ब सहित आबू पहाड़ पर आये। उस समय आबू पर ब्राह्मणों का बड़ा जोर था। शिव-मन्दिर आदि वहाँ इतने अधिक बने हुए थे, कि सिर्फ उनकी पूजा करने वाले पुजारी ही ११००० रहते थे। विमलशाह ने वहाँ पहुँचकर मन्दिर के लिये जगह माँगी। किन्तु पुजारियों ने जगह देने से साफ इनकार कर दिया। विमलशाह ने उन्हें खूब समझाया। पुजारियों ने कहा, कि-“यदि आपको यहाँ पर जगह की आवश्यकता ही हो तो जितनी जमीन चाहते हैं, उस पर सोने के सिक्के बिछवाकर हमें देदो और उतनी ही जमीन आप लेलो।” विमलशाह ने यह बात स्वीकार करली ओर सोने के सिक्के बिछाकर जमीन खरीद ली। जमीन प्राप्त कर चुकने पर उन्होंने सारे देश में से छाँट-छाँट कर कारीगर बुलाये और संगमरमर की खान में से संगमरमर पत्थर निकलवा कर, हाथियों पर लाद-लाद कर आबू पहाड़ पर लाने लगे। विमलशाह के हृदय में उत्तमोत्तम मन्दिर बनाने की भावना थी, अतः उन्होंने शिलावट लोगों से कहा, कि-“तुम लोग अपनी सारी कला इस काम में लगा देना। पत्थर में नकाशी खोदते हुए जितना चूरा गिरेगा मैं उतनी ही चाँदी तुम्हें दूँगा।” दो हजार कारीगरों ने १४ वर्ष तक काम किया। १८ करोड़ और तीस लाख रुपये के खर्च से एक भव्य जैन-मन्दिर तैयार हुआ। जिसमें श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति स्थापित की गई।

वह मन्दिर आज भी आबू पहाड़ पर शोभा दे रहा है। संसार में इसकी कारीगरी का कोई मुकाबला नहीं है।

१६, महामन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल

(१)

तेरहवीं सदी की बात है। जब कि गुजरात में सोलंकी राजाओं की शक्ति निर्बल पड़ गई थी और राजा वीरधवल की सत्ता बढ़ने लगी थी।

वीरधवल के एक मन्त्री, आशराज नामक श्रावक थे। वे सुहलिक ग्राम में रहते थे। उनके कुमारदेवी नामक एक गुणवती स्त्री थी। इस स्त्री से उनके तीन पुत्र और सात कन्याएँ हुईं। लड़कों के नाम थे-१ मल्लदेव, २ वस्तुपाल तथा ३ तेजपाल। लड़कियों के नाम १ जल्लू, २ माउ, ३ साउ, ४ धनदेवी, ५ सोहग, ६ वयजू और ७ पद्मा थे। आशराज ने अपने सभी पुत्रों तथा पुत्रियों को अच्छी तरह पढ़ाया-लिखाया। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल सबसे तेज निकले। इन दोनों को विद्या पर अथाह प्रेम, कला से गहरी प्रीति और धर्म पर अपार श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयों की जोड़ी सबका चित्त हरण करती और सब पर प्रभाव डालती थी।

जब ये सयाने हुए, तो पिताजी ने गुणवती कन्याओं के साथ इन दोनों का विवाह कर दिया। वस्तुपाल का ललितादेवी से तथा तेजपाल का अनुपमा से।

थोड़े दिनों के बाद पिता की मृत्यु हो गई, अतः पितृभक्त पुत्रों को बड़ा दुःख पहुँचा। इस दुःख को भूलने के लिये वे मांडल में आकर बसे और माता की बड़ी सेवा-भक्ति करने लगे।

यहाँ अपने अच्छे व्यवहार से उन्होंने थोड़े ही समय में काफी नामवरी प्राप्त की ।

थोड़े समय के बाद उनकी वात्सल्यमूर्ति माता का भी देहान्त हो गया, जिससे उन्हें बड़ा दुःख पहुँचा । इस दुःख को दूर करने के लिये उन्होंने शत्रुञ्जय की यात्रा की । पवित्र तीर्थ शत्रुञ्जय की यात्रा करने पर किसका मन शान्त नहीं होता ? उसके पवित्र वातावरण में इन दोनों भाइयों का शोक दूर हो गया । वहाँ से वे वापस लौटे और राज-सेवा की इच्छा से मार्ग में धोलका नामक ग्राम में रुक गये । यहाँ उनकी राज-पुरोहित सोमश्वर के साथ घनिष्ठ मित्रता हो गई ।

(२)

इस समय गुजरात की स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी । इसी कारण राजा वीरघवल सोच रहे थे, कि मुझे चतुर प्रधान तथा सजग सेनापति मिल जाय तो मेरी इच्छाएँ पूर्ण होजायँ ।

राज-पुरोहित को जब यह बात मालूम हुई, कि राजाजी प्रधान तथा सेनापति ढूँढने की चिन्ता में हैं, तो वे राजा के पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने राजा से कहा—“महाराज ! चिन्ता दूर कीजिये । आपको जैसे मनुष्य की आवश्यकता थी, वैसे ही दो नर-रत्न इस नगर में आये हुए हैं । वे न्याय करने में बड़े निपुण हैं, राज्य व्यवस्था खूब जानते हैं और जैन धर्म के तो मानो रक्षक ही हैं । किन्तु अन्य धर्मों के प्रति समान सद-भाव रखते हैं । यदि आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें आपके सामने हाजिर करूँ ।”

राजा ने पुरोहित को आज्ञा दी, अतः वे इन दोनों भाइयों को राजा-सभा में ले गये । वहाँ राजा के सामने सुन्दर भेंट रखकर इन दोनों भाइयों ने उन्हें प्रणाम किया । राजा वीरघवल ने इन

जैसा सुना था, वैसे ही पाया। अतः वे बोले, कि—“तुम लोगों की मुलाकात से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ और यह सारा राज्य भार (कारोबार) तुम्हें सौंपता हूँ।” दोनों भाई यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुये। फिर वस्तुपाल ने राजा से कहा—“महाराज ! यह हम दोनों का अहोभाग्य है कि आपकी हम पर ऐसी कृपा हुई। किन्तु हमें एक प्रार्थना करनी है, उसे भी आप ध्यानपूर्वक सुन लीजिये। वह यह कि जहाँ अन्याय होगा, वहाँ हम लोग जरा भी भाग न लेंगे। राज्य का चाहे जितना जरूरी काम हो, किन्तु देवगुरु की सेवा से हम लोग न चूकेंगे। राज्य की सेवा करते हुए यदि आपसे कोई हमारी चुगलो करें और उसके कारण हमें राज्य छोड़कर जाने का मौका आवे, तो भी हमारे पास जो तीन लाख रुपये का धन है, वह हमारे ही पास रहने देना होगा। यदि आप इन बातों का राजपुरोहित की साक्षी से वचन दें, तब तो हम आपकी सेवा करने को तैयार हैं, नहीं तो आपका कल्याण हो।”

राजा ने इसी तरह का वचन देकर वस्तुपाल को धोलका तथा खंभात का महामन्त्री बनाया और तेजपाल को सेनापति का पद दिया।

(३)

जिस समय वस्तुपाल महामन्त्री बने, उस समय न तो खजाने में धन था और न राज्य में न्यायालय-अधिकारी लोग बहुत ज्यादा रिश्वतें खाते और राज्य की आय अपनी ही जेब में रख लेते थे। उन्हें दवाने की शक्ति किसी में भी न थी। इस सारी स्थिति को ध्यान में रखकर ही वस्तुपाल ने अपना काम शुरू किया।

वे सज्जनों का सत्कार करने लगे और जितने अधिकारी घूस खोर थे, उन्हें पकड़-पकड़ कर कड़ी सजायें देने लगे। इस प्रकार की

व्यवस्था से उन्हें बहुत सा धन मिलने लगा । जिससे उन्होंने एक बड़ी सेना तैयार की । फिर राज्य का सारा कार्यभार कुछ दिनों के लिये तेजपाल को सौंपा, और आप सेना लेकर राजा के साथ भ्रमण को चले । जिन-जिन ग्रामों के जमीदारों ने राज्य का कर देना बन्द कर दिया था, उन उन ग्रामों में जाकर उनसे सब रूपया वसूल किया । जिन जागीरदारों ने किस्तें देनी बन्द कर दी थीं, उनसे भी पिछली सब बकाया रकम वसूल कर ली । इस तरह सारे राज्य में घूम फिर कर उन्होंने राज्य का खजाना भर दिया और सब जगह शान्ति तथा व्यवस्था कायम कर दी ।

अब वस्तुपाल ने मिले हुए धन से एक मजबूत सेना तैयार की और पड़ोस के राजाओं को जीतने की तैयारी की ।

उस समय कठियावाड़ में बड़ा अन्धेर फैल रहा था । वहां के राजा लोग यात्रियों को लूट लेते थे । इसी कारण वस्तुपाल सबसे पहले काठियावाड़ की तरफ को चले और वहाँ के अधिकांश राजाओं को शीघ्र ही अपने वश में कर लिया । यों करते-करते ये वनथली नामक स्थान पर आये । वहां राणा वीरधवल के साले सांगण और चामुण्ड राज्य करते थे । इनके अभिमान की कोई सीमा ही न थी । वस्तुपाल ने उन्हें खूब समझाया, किन्तु वे अधीन न हुए, अतः युद्ध शुरू हो गया । इस लड़ाई में सांगण तथा चामुण्ड दोनों मारे गए और वस्तुपाल की विजय हुई । वस्तुपाल ने उनके लड़कों को राजगद्दी दे दी । इस तरह सारे काठियावाड़ में विजय का डंका बजाकर वस्तुपाल, राजा के साथ गिरनार गए । अत्यन्त भक्तिपूर्वक वहाँ की यात्रा करके वे वापिस लौट पड़े ।

(४)

भद्रेश्वर का राणा भीमसिंह, वीरधवल का कर देने वाला

अधीन राजा था। किन्तु उस समय उसने कर देने से नांही करदी थी। उसकी सेना में तीन बड़े बहादुर लड़ने वाले योद्धा थे। अतः उसे गर्व था कि मेरा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। वस्तुपाल तथा राणा वीरधवल ने उस पर चढ़ाई कर दी। इस लड़ाई में वीरधवल हार गए, किन्तु उसी समय वस्तुपाल फौज लेकर वहां जा पहुँचे। वे बड़े चतुराई से लड़े और अन्त में विजय प्राप्त कर ही ली।

(५)

वस्तुपाल यह जबरदस्त विजय प्राप्त करके पीछे लौटे। इसी मौके पर उन्होंने सुना कि गोधरा का शासक घूघुल मदान्ध हो रहा है और अपनी प्रजा को नाना प्रकार से कष्ट दे रहा है। यह सुनकर वस्तुपाल ने उसे कहला भेजा, कि—“तुम शीघ्र ही राजा वीरधवल के अधीन हो जाओ।” उसने वस्तुपाल के संदेश पर तो ध्यान दिया ही नहीं, उल्टे एक दूत के साथ थोड़ा सा काजल, एक चोली, और एक साड़ी वीरधवल को भेंट स्वरूप भेजी। इस अपमान से राजा वीरधवल बहुत चिड़े। उनके नेत्रों से आग बरसने लगी। राजा ने लाल-लाल नेत्रों से अपने सभासदों की तरफ एक आशा पूर्ण दृष्टि से देखा, किन्तु कोई भी घूघुल को जीतकर पकड़ लाने के लिए तैयार न हुआ। क्योंकि लोगों के हृदयों पर घूघुल का बड़ा आतंक जमा हुआ था। अन्त में तेजपाल उठकर खड़े हुए, और यह प्रतिज्ञा की, कि मैं शीघ्र ही घूघुल को जीतकर उसे यहां पकड़ लाऊंगा। राजा वीरधवल यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

तेजपाल एक बड़ी सेना लेकर गोधरे की तरफ चले। वहां पहुँचने पर एक भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में घूघुल पकड़ा गया, और उसे एक पिंजरे में बन्द करके धोलका लाया गया। यहाँ उसी की

भेंट की हुई चोली तथा साड़ी उसे पहिनाई गई। इस अपमान से दुखी होकर उसने आत्महत्या करली।

(६)

खंभात में सिदीक नामक एक बड़ा व्यापारी रहता था। वह वहां का मालिक सा बना बैठा था। उसने एकवार जरा से अपराध के कारण नगरसेठ की सम्पत्ति लूट ली और उसका खून करवा दिया। नगर सेठ के लड़के ने उस जुल्म की वस्तुपाल से शिकायत की। वस्तुपाल ने सिदीक को उचित दण्ड देना तय किया। सिदीक को जब यह बात मालूम हुई तो उसने अपनी सहायता के लिए अपने मित्र शंख नामक राजा को बुलावा भेजा। जबरदस्त लड़ाई हुई। जिसमें शंख राजा मारा गया और वस्तुपाल की विजय हुई। इसके बाद खंभात शहर में जाकर सिदीक का घर खुदवाने पर वस्तुपाल को बहुत अधिक सोना तथा बहुत से जवाहरात मिले। कहा जाता है कि इन चीजों की कीमत तीन अरब रुपये के लगभग की थी।

(७)

एकवार दिल्ली के बादशाह मौजदीन ने गुजरात पर चढ़ाई कर दी। यह समाचार जब वस्तुपाल तथा तेजपाल को मालूम हुआ तो ये दोनों भाई अपनी बड़ी भारी सेना लेकर आबू पहाड़ तक उसके सामने आये। वहां भयंकर युद्ध करके इन्होंने मौजदीन के हजारों मनुष्यों को मार भगाया। बेचारा मौजदीन हताश होकर वापस दिल्ली को लौट गया।

ये सब लड़ाइयां लड़ चुकने पर उन्होंने समुद्र के किनारे की तरफ चढ़ाई की और वहां महाराष्ट्र तक अपनी दोहाई फिरवाई।

इस तरह इन दोनों भाइयों ने अनेक छोटे-मोटे युद्ध करके

गुजरात की सत्ता अच्छी तरह जमाई और चारों तरफ शान्ति तथा व्यवस्था की स्थापना करके विजय का डंका बजाया ।

(८)

ये दोनों भाई लड़ाई तथा राज्यकार्य में जैसे निपुण थे, वैसे ही धर्म में भी बड़ी श्रद्धा रखने वाले थे । वे अष्टमो और चतुर्दशी को उपवासादि करते, तथा सामायिक एवं प्रतिक्रमण भी नियमित रूप से करते थे । अपने धर्म-बन्धुओं पर उन्हें अगाध प्रेम था । प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपया अपने धर्म-बन्धुओं के लिये खर्च करने का उन्होंने नियम कर रखा था ।

उनकी उदारता की कोई सीमा न थी । वे मुक्तहस्त होकर दान करते ही जाते थे । होता यह था कि ज्यों-ज्यों वे धन का सदुपयोग करते ही जाते थे, त्यों-त्यों धन और बढ़ता ही जाता था । इसलिये वे दोनों भाई विचार करने लगे, कि इस धन का आखिर क्या किया जाय ?

तेजपाल की स्त्री अनुपमादेवी बुद्धि की भंडार थी, अतः इसके लिये उससे सलाह पूछी । उन्होंने जवाब दिया, कि इस धन के द्वारा पहाड़ों के शिखरों की शोभा बढ़ाओ, अर्थात् वहां सुन्दर-कारीगरी पूर्ण मन्दिर बनवाओ । यह सलाह सबको पसन्द पड़ी । अतः शत्रुञ्जय, गिरनार और आबू पर भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया गया । इनमें भी आबू के मन्दिर बनवाते समय तो उन्होंने पीछे फिर कर भी न देखा कि इस पर कितना धन खर्च हो रहा है । उन्होंने देश के अच्छे से अच्छे कारीगर एकत्रित किये, और नक्सी (कोरणी) करते समय गिरने वाले चूरे के बराबर उन लोगों को सोना अथवा चांदी पुरस्कार में दिया । इन मन्दिरों को शीघ्र पूरा करवाने के लिये उन्होंने अपनी तरफ से वहां

भोजनालय की व्यवस्था की, और जाड़े के दिनों में प्रत्येक कार्य-कर्त्ता के पास एक सिगड़ी (अँगीठी) रखवाने का इन्तजाम किया। लगभग बारह करोड़ रुपये के खर्च से यह मन्दिर तैयार हुए। जिसकी जोड़ी आज भी संसार में कहीं नहीं हैं। विमलशाह के मन्दिर के पास ही यह मन्दिर भी बना हुआ है। करोड़ों की लागत वाले नेमिनाथ का यह कलाघाम लूणिग के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् उन्होंने और भी बहुत से मन्दिर तथा उपाश्रय बनवाये एवं अनेकों पुस्तकों के ज्ञान भंडार स्थापित किये। बारह बार शत्रुञ्जय और गिरनार के संघ निकाले। ये संघ इतने बड़े-बड़े थे, कि हम लोगों के चित्त में तो कभी उतने बड़े संघों का खयाल भी नहीं आ सकता। एक बार के संघ में तो सात लाख मनुष्य थे।

इन दोनों भाइयों की उदारता केवल जैनियों अथवा केवल गुजरातियों के लिये ही सीमित नहीं थी। उन्होंने प्रत्येक धर्म वालों के साथ सारे भारत में उदारता व दानशीलता का व्यवहार किया। केदारनाथ से कन्याकुमारी तक ऐसा एक भी छोटा बड़ा तीर्थ-स्थान नहीं है, जहाँ इन लोगों की उदारता का परिचय न मिला हो। सोमनाथ पाटण को ये दस लाख और काशी, द्वारिका आदि स्थानों को प्रतिवर्ष एक-एक लाख रुपया सहायता-स्वरूप भेजते थे। यही नहीं उन्होंने बहुत से शिवालय तथा मस्जिदें भी बनवाई थीं। तालाब, कुएँ और बाबड़ियें उन्होंने बनवाई थीं, इसकी तो कोई गिनती ही नहीं है।

इन दोनों भाइयों के सूझ-बूझ एवं चतुरतापूर्ण कार्यों से प्रजा बड़ी सुखी थी। राज्य में बन्दोबस्त भी बहुत अच्छा था। सब धर्मों के लोग अपना-अपना धर्म अच्छी तरह पालन कर सकते थे। देश

में दुष्काल का नहीं नाम भी न था ।

ये स्वयं विद्वान और अनेकों विद्वानों के आश्रय दाता थे ।

राजा बीर धवल की मृत्यु हो गई । उसकी मृत्यु के बाद इन दोनों भाइयों ने उनके पुत्र बीसलदेव को राजगद्दी पर बैठाया और स्वयं पहले की तरह राज्य करने लगे ।

कुछ दिनों बाद वस्तुपाल को यह जान पड़ा कि अब अन्त-काल समीप आ गया है, अतः उन्होंने सबके साथ मिलकर शत्रुंजय के लिए एक संघ निकाला । राजा वीसलदेव और राजपुरोहित सोमेश्वर ने अपने नेत्रों से आंसू निकालते हुए उन्हें विदा किया ।

रास्ते में वस्तुपाल को बीमारी ने घेर लिया और उनकी मृत्यु हो गई । उनके शव का अन्तिम संस्कार शत्रुंजय पर किया गया और वहाँ एक जैन मन्दिर का निर्माण हुआ । उनकी मृत्यु के बाद ललितादेवी ने भी उपवास करके अपना शरीर छोड़ दिया । इसके पाँच वर्ष पश्चात्, तेजपाल का देहान्त हुआ, और अनुपतादेवी ने पति के वियोग होते ही, अनशन प्रारम्भ करके अपनी सांसारिक लीला समाप्त कर दी ।

मन्त्रीस्वर, वस्तुपाल तेजपाल जैसे वीर, विद्वान नीति, निपुण, धर्म-निष्ठ और कला प्रेमी विरले ही व्यक्ति हुए हैं जैसे भारत भूमि गौरवान्वित हैं ।

१७ पैथङ्कुमार

नीमाड़ प्रदेश के नांदूरी नामक ग्राम में पैथङ्कुमार नामक एक श्रावक रहते थे । इनके पिता देदाशाह बड़े मालदार थे । किन्तु ज्योंही उनकी मृत्यु हुई, त्योंही सब धन धीरे-धीरे नष्ट हो गया, जिससे पैथङ्कुमार बड़ी बुरी दशा में आ पड़े । इस समय उन्हें न तो पेट भरकर भोजन ही मिलता था और न पहनने को ठीक कपड़े ही । ज्यों-त्यों करके वे अपना गुजर करते थे । इनके पद्मिनी नामक एक स्त्री थी, और झाँझण नामक एक पुत्र । ये तीनों ही बड़े भले और धर्म के बड़े प्रेमी थे ।

एक बार ग्राम में कोई विद्वान-मुनिराज पधारे, अतः सब लोग उनका उपदेश सुनने को गये, साथ ही पैथङ्कुमार भी गये । वहाँ मुनि-महाराज ने अमृत के समान मीठी-वाणी से पवित्र-जीवन जीने की कला व धर्म-मार्ग समझाते हुए—कहा ब्रह्मचर्य का पालन करो, सन्तोष धारण करो, तप से शरीर तथा मन पर संयम प्राप्त करो, भगवान की भक्ति से हृदय को पवित्र बनाओ—आदि । इस उपदेश का बहुत लोगों पर प्रभाव हुआ । किसी ने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, किसी ने एक सीमा तक सम्पत्ति रखकर शेष अच्छे कामों में खर्च कर डालने का व्रत लिया, किसी ने तप करने का व्रत लिया और किसी ने अपनी शक्ति व इच्छानुसार और-और व्रत लिये । उस समय बेचारे पैथङ्कुमार अपने दुखी-जीवन का विचार करते हुए बैठे रहे ।

फटे कपड़ों से बँठे हुए पैथङ्कुमार को देखकर कुछ मसखरों ने कहा, कि—“गुरु महाराज ! यह पैथङ् तो रह ही गया । इसे

परिग्रह (धन-माल) की सीमा करवा दोजिये। यह भी, कुछ वर्षों में लखपती हो जाने के काबिल है।”

यह सुनकर मुनिराज बोले, कि—“महानुभावो ! ऐसा बोलना ठीक नहीं है। धन का अभिमान तो कभी किसी को करना ही नहीं चाहिये। धन तो आज है और कल नहीं। कौन कह सकता है, कि कल सबेरे ही पेथड़कुमार तुम सबसे अधिक धनवान न हो जाय।”

फिर साधुजी ने पेथड़कुमार से कहा, कि—“महानुभाव ! तुम परिग्रह की सीमा करलो।” पेथड़कुमार ने उत्तर दिया, कि—“गुरुदेव ! मेरे पास ऐसा कुछ भी धन-माल है ही कहां, जो मुझे सीमा करने की आवश्यकता पड़े।” मुनिराज ने कहा, कि—“आज तुम्हारी यह दशा है, किन्तु कल ही तुम अच्छी हालत में हो सकते हो। अतः तुम्हें परिग्रह की सीमा तो कर ही लेनी चाहिये।” पेथड़कुमार ने मुनिराज की यह बात मानली, अतः साधुजी ने उन्हें यह व्रत करा दिया, कि—“पांच लाख रुपये तक की सम्पत्ति रखकर, शेष सब धर्म के कार्यों में खर्च कर डालूंगा।”

पेथड़कुमार को उस समय ऐसा जान पड़ा, कि—यह परिग्रह सीमा तो बहुत अधिक है। मुझे तो पांच-हजार रुपये के भी दर्शन होना कठिन मालूम होता है, तो पांच-लाख रुपये की मर्यादा कैसे रखना ठीक हो सकती है ? किन्तु गुरुजी ने जो यह सीमा बनवाई है, तो कुछ सोच-विचारकर ही बनवाई होगी। यों सोचते हुए वे अपने घर चले आये।

पेथड़कुमार की दशा, दिन-दिन खराब होने लगी। यहां तक, कि-दोनों समय खाने को भी बड़ी मुश्किल से मिलने लगा। अतः परेशान होकर, वे अपना ग्राम छोड़ अपने कुटुम्ब को साथ लिये हुए परदेश को चल दिये।

इस समय मालवे का मांडवगढ़ एक जबरदस्त शहर था । वहाँ हजारों धनी-मानी लोग रहते थे, जो करोड़ों का व्यापार करते थे । पेंथड़कुमार ने विचारा, कि मुझे मांडवगढ़ जाना चाहिये, वहाँ मैं आसानी से अपना निर्वाह कर सकूँगा । यों सोचकर, वे मांडवगढ़ आये ।

यहाँ आकर, बाप-बेटे ने घी की दुकान करली । आस-पास के ग्रामों की ग्वालिनें घी बेचने आती थीं, उनसे खरीदकर, उसे ये अपनी दुकान पर बेचते थे । उनकी दुकान पर चाहे बच्चा आवे या बुढ़ा, सबको एक ही भाव दिया जाता था । इसके अतिरिक्त, माल में वे सेल-तेल भी नहीं करते थे । जैसा माल बतलाते थे, वैसा ही देते थे । इसी कारण थोड़े ही दिनों में उनकी अच्छी साख जम गई ।

एक बार एक ग्वालिन घी की मटकी लेकर पेंथड़कुमार की दुकान पर आई और पूछा, कि—“सेठजी ! आपको घी चाहिये क्या ?” पेंथड़कुमार ने घी लेकर देखा, तो वह बड़ा ही सुगन्धित और दानेदार था । उन्होंने ग्वालिन से कहा, कि—हां, मैं ले लूँगा ।” ग्वालिन ने अपना बर्तन पेंथड़कुमार को सौंप दिया और वे उसमें से घी निकाल कर तौलने लगे । पेंथड़कुमार उस बर्तन में से घी निकालते ही जाते थे, किन्तु उस बर्तन का घी कम न होता था । यह देखकर उन्होंने विचारा कि अवश्य ही इस बर्तन में कोई करामात है । अतः उन्होंने बर्तन को ऊपर उठाया । ऊपर ऊठाते ही उन्हें उसके पेंदे में एक बेल की गोल इंडाणी दिखाई दी । पेंथड़कुमार समझ गये, कि निश्चय ही यह चित्ता-बेली है । उसके अतिरिक्त और किसी चीज से बर्तन में इतना बढ़ नहीं सकता । यों सोचकर उन्होंने ग्वालिन से उस इंडाणी सहित घी का बर्तन खरीद लिया । अच्छा दाम पाकर ग्वालिन चली गई और पेंथड़कुमार तथा ज्ञानेण बड़े प्रसन्न हुए ।

गरीब पेथड़कुमार का भाग्य थोड़े ही दिनों में पलट गया और अब उन्हें खूब धन मिलने लगा। अब वे दोनों बाप बेटे लोगों को बड़े चतुर मालूम होने लगे और सब लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। वहाँ के राजा जयसिंह ने भी उनकी प्रशंसा सुनी तो अब उन्होंने इन दोनों बाप-बेटों को बुलवाया और इनको चतुराई की परीक्षा की। परीक्षा लेने पर राजा को भी यह विश्वास हो गया, कि ये दोनों बड़े चतुर हैं। उन्होंने पेथड़ को अपना प्रधान और ज्ञानिण को नगर का कोतवाल बनाया।

पुराने प्रधान को पेथड़कुमार से ईर्ष्या हुई कि यह थोड़े दिन पहले आया हुआ बनिया मांडवगढ़ का प्रधानमन्त्री कैसे होगया? अतः उसने राजा के सामने यों चुगली की कि—“महाराजा ! इस पेथड़कुमार के पास चित्तावेली है और वह तो आपके बड़े काम की चोज है। यदि वह आपके पास रहे, तो आपका भण्डार कभो खाली ही न हो।” राजा ने, पेथड़कुमार को बुलाकर इस विषय में पूछताछ की। पेथड़कुमार ने सब बातें ठीक-ठीक बतला दी और फिर राजा से कहा, कि—“महाराज, आज से चित्तावेली आपकी भेंट है।” यह सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए।

पेथड़कुमार-मन्त्री ने प्रजा के बहुत से 'कर' कम करवा दिये और प्रजा को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न किया।

एक बार वे थोड़े दिनों की छुट्टी लेकर यात्रा को गये। जीरावला पार्श्वनाथ की यात्रा करके आबू पहुंचे। आबू के सुन्दर-वे मन्दिर देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

आबू-पहाड़ पर अनेक प्रकार की वनस्पतियों और जड़ी-बूटियों होती हैं। कहा जाता है, कि पेथड़कुमार को यहां से एक ऐसी वनस्पति प्राप्त हुई, जिससे सोना बनाया जा सकता था।

भाग्य की बलिहारी है, कि चित्रावेली हाथ से जाते ही स्वर्ण-सिद्धि प्राप्त हो गई ।

एक बार नगर में एक विद्वान-आचार्य पधारे । पेशङ्कुमार ने उन्हें भक्ति-पूर्वक वन्दना करके पूछा, कि—“गुरुदेव ! मेरे पांच-लाख रुपये रखने की सोमा है, किन्तु धन उससे बहुत अधिक होगया है । अतः आप बतलाइये, कि मैं उसे किस काम में खर्च करूँ ?” मुनि-राज बोले कि—“महानुभाव ! इस समय मन्दिरों का बनवाना सबसे अच्छा काम है, अतः तुम अपना धन उसीमें लगाओ ।” पेशङ्कुमार को यह बात ठोक मालूम हुई अतः उन्होंने अठारह लाख रुपये खर्च करके मांडवगढ़ में एक भव्य-मन्दिर बनवाया । देवगिरि में भी एक सुन्दर जैन-मन्दिर तैयार करवाया और फिर भिन्न-भिन्न स्थानों पर बहुत से मन्दिर बनवाये । कहा जाता है, कि उन्होंने सब मिलाकर चौरासी मन्दिर बनवाये थे ।

पेशङ्कुमार को अपने धर्म-बन्धुओं से बड़ा प्रेम था । उन्हें जब कोई भी स्वधर्मी मिल जाता, तो वे बड़े प्रसन्न हो उठते । ऐसे समय में यदि वे घोड़े पर बैठे होते तो नीचे उतरकर उस स्वधर्मी बन्धु का सम्मान करते थे । अपने धर्म-बन्धुओं की आर्थिक-स्थिति सुधारने के लिये उन्होंने गुप्त-दान भी बहुत दिये ।

उन्होंने बत्तीस वर्ष की अवस्था में अपनी स्त्री सहित ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया और उसे ऐसी शुद्धता तथा दृढ़ता से पाला कि उसका बड़ा विचित्र-प्रभाव पड़ने लगा । यहाँ तक कि जो भी मनुष्य, रोग-शोक से पीड़ित हों और उनका कपड़ा ओढ़ लें, तो उनके रोग जाय-शोक मिट जावें ।

एक बार, जयसिंह की रानी लीलावती को बड़े जोर से

बुखार आया, जिससे शरीर में जलन होने लगी। अनेकों उपाय करने पर भी उसे किसी तरह से ठण्डक न पहुंची। शान्ति नहीं मिली इसी समय एक दासी ने पेथड़कुमार का वस्त्र लाकर, रानी को ओढ़ा दिया। वह वस्त्र ओढ़ते ही रानी को शान्ति प्राप्त हो गई। शान्ति मिलते ही उसे नींद आ गई।

यह देखकर एक चुगल खोर-दासी ने राजा से कहा, कि—“लीलावती, प्रधान से प्रेम करती है, देखिये उसका वस्त्र ओढ़ रखा है।”

राजा, यह सुनकर बड़े नाराज हुए और मन्त्री को पकड़ कर कैद कर दिया तथा रानी को जंगल में लेजाकर मार डालने का हुक्म दे दिया। राजा के एक दम ऐसा हुक्म देने पर, सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

जल्लाद लोग लीलावती को लेकर जंगल में गये, किन्तु उसे मारने की उनकी हिम्मत न पड़ी अतः यों ही छोड़ दी। रानी वेश बदलकर शहर में फिर लौट आई। पेथड़ को पुत्र ज्ञानेश्वर कुमार ने चतुरता पूर्वक उसे अपने घर में छिपा लिया।

एक बार राजा के हाथी को शराब अधिक पिला दी गई, जिससे वह पागल हो गया। थोड़ी देर उपद्रव कर चुकने के बाद वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। राजा को अपने प्यारे-हाथी की यह दशा देखकर, बड़ा दुःख हुआ। अनेकों उपाय करने पर भी हाथी की दशा न सुधरी। इसी समय उस दासी ने कहा—“महाराज ! यदि पेथड़कुमार का वस्त्र मंगवाकर हाथी को ओढ़वा दिया जाय, तो वह अवश्य ही अच्छा हो जायगा।” राजा ने ऐसा ही किया और हाथी उठ खड़ा हुआ। इसके बाद दासी ने अपना पूर्व अनुभव कह सुनाया, कि किस तरह रानी को बड़े जोर का बुखार चढ़ आया था,

जिससे मैंने उन्हें यह वस्त्र ओढ़ाया था—और उनका बुखार ठीक हो गया था ।

यह सुनकर, राजा को बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने पथङ्कुमार को जेल से छोड़ दिया और उसने अपनी भूल के लिए माफी माँगी । अब राजा जयसिंह को लीलावती की याद आई, जिससे वे बहुत शोक करने लगे । यह देखकर पथङ्कुमार ने कहा, कि—“महाराज ! मैं थोड़े ही समय में रानी लीलावती को आपसे मिला दूँगा, आप जरा भी शोक न कीजिये ।” राजा जयसिंह को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ, कि रानी लीलावती अभी जीवित कैसे है । फिर, पथङ्कुमार ने जो कुछ हुआ था, वह सब राजा से कह सुनाया । राजा ने लीलावती को मँगवाकर, अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी और फिर सुख से रहने लगे ।

अब पथङ्कुमार को वृद्धावस्था आनी शुरू हुई । इस समय, उनका मन अधिक पवित्र तथा अधिक सेवा-भाव वाला बन गया । उन्होंने सिद्धाचलजी की यात्रा के लिए संघ निकालने का इरादा किया ।

बहुत-बड़ा संघ अपने साथ लेकर उन्होंने सिद्धाचल (शत्रुजंय) को यात्रा की और वहाँ श्री आदिनाथ-भगवान की बड़ी भक्ति की । यहाँ से वे गिरनार गये । वहाँ एक सज्जन से रपट्ठापूर्वक बातचीत हो जाने के कारण, इन्होंने ५६ मन सोना की बोली बोलकर 'इन्द्रमाल' पहनी ।

यह यात्रा करके, पथङ्कुमार वापिस माँडवगढ़ लौट आये । वहाँ उन्होंने अपने जाति-भाइयों की खूब मदद की । अनेकों लेखक बिठाकर, बहुत सी पुस्तकें भी लिखवाईं, जिनसे बड़े-बड़े सात ज्ञान भण्डार भर गए ।

अब पेथड़कुमार अपना अधिकांश समय प्रभु-भक्ति में ही बिताने लगे। वे सबेरे-शाम प्रतिक्रमण करते, और तीन काल में जिनेश्वर की पूजा करते। यों करते-करते जब उन्हें यह जान पड़ा कि मेरा मरणकाल नजदीक है, तो उन्होंने तीर्थङ्कर देव का ध्यान धर लिया और शान्तिपूर्वक अपनी आयु पूर्ण की।

सारा मांडवगढ़, मन्त्रीश्वर के मरण से दुखी हो उठा। झांझणकुमार के दुःख की तो कोई सीमा ही न थी। इस शोक को दूर करने के लिए उन्होंने शत्रुञ्जय का एक महान संघ निकाला। इस संघ में बारह-हजार गाड़िये और पच्चीस-हजार पीठ पर सामान ले चलने वाले लोग थे। बहुत से मुनि महात्मा भी इस संघ में थे। संघ के चौकीदार पहरे के लिए ही दो-हजार सिपाही साथ थे। इससे उस संघ की विशालता का अनुमान लगा लीजियेगा।

यह बाप—बेटे की जोड़ी धर्म-भावना से परिपूर्ण थी। उन्होंने अपने उच्च—जीवन तथा अपार—सम्पत्ति से जैन-धर्म को चमकाया था। ऐसे अनेकों रत्न जैन समाज में पैदा हों और संसार में शान्ति तथा प्रेम की स्थापना करें। यही शुभ कामना है।

मनुष्य के भाग्य का कोई पता नहीं है, किस समय कैसी स्थिति हो जाय पर जब भाग्य साथ दे और धन और सत्ता प्राप्त हो जाय तो उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये। बुरे दिनों में घबराना नहीं चाहिये और समृद्धि मिलने पर अभिमान नहीं करना चाहिये। पितृकुमार ने बुरी और अच्छी दोनों स्थितियां देखीं और जो उन्हें करना चाहिये था किया। जैन श्रावक केवल व्यापारी ही नहीं होता वे समाज और धर्म की महान सेवा करने वाला भी होता है अपने कल्याण के साथ प्राणी मात्र के कल्याण का वह प्रयत्न करता है।



१८ दानवीर जगडूशाह

(१)

कच्छ देश में भद्रेश्वर नामक एक ग्राम है । इस ग्राम में एक सेठ-सेठानी रहते थे । सेठ का नाम था सोलक और सेठानी का लक्ष्मी । इनके तीन लड़के हुए । इन लड़कों में से एक का नाम जगडू, दूसरे का नाम राज, और तीसरे का पद्म था । ये तीनों भाई बड़े साहसी और चतुर थे । योग्य-अवस्था होने पर इन तीनों का विवाह अच्छे घराने की कन्याओं के साथ कर दिया गया । जगडू का यशोमती के साथ, राज का राजलदे के साथ, और पद्म का पद्मा के साथ विवाह हो गया ।

लड़के, अभी बीस वर्ष की अवस्था के भीतर के ही थे, कि सोलक श्रावक का देहान्त होगया । तीनों भाइयों को इससे बड़ा दुख पहुँचा । किन्तु शोक करने से क्या लाभ हो सकता था ? जगडू ने धीरज धारण करके घर का सारा काम-काज अपने सिर पर उठा लिया ।

तीनों भाइयों में जगडू बड़ा चतुर था । उसका दिल बड़ा विशाल तथा हृदय प्रेम से लबालब भरा था । दान करने में तो उसकी जोड़ी का कोई था ही नहीं । कोई भी दीन-दुखी अथवा मंगते-भिखारी उसके दरवाजे पर आकर खाली हाथ न जाने पाते थे । जगडू यह बात समझता था, कि धन आज है और कल नहीं, अतः उससे लाभ उठा लेना ही चाहिये । यही कारण था कि दान देने में वह कभी पीछे नहीं रहता था ।

धन, धीरे-धीरे कम होने लगा, अब जगडू को यह चिन्ता

होने लगे कि—“क्या कभी ऐसा भी समय आ सकता है, जब मेरे दरवाजे से किसी याचक को खाली हाथ जाना पड़े ? हे नाथ ! ऐसा समय मत लाना ।”

जगडू इसी प्रकार की चिन्ता किया करता था, कि एक दिन उसके भाग्य ने जोर मारा । शहर के दरवाजे पर उसने बकरियों का एक झुण्ड देखा । इस झुण्ड में एक बकरी के गले में मणि बँधी हुई थी, मणि बड़ी मूल्यवान थी । किन्तु उस चरवाहे (ग्वालिये) को इस बात क्या पता ? उसने तो काँच समझ कर ही बकरी के गले में बांध रखी थी ।

जगडू ने विचार किया कि—“यदि यह मणि मुझे मिल जाय, तो संसार में मैं अपने सारे इच्छित कार्य कर सकूँगा । अतः मैं इस बकरी को ही खरीद लेता हूँ, जिससे उसे संदेह ही न हो और मुझे मणि भी मिल जाय ।” यों सोचकर उसने थोड़े ही दामों में वह बकरी खरीद ली । इसके बाद उसे धन की कोई कमी नहीं रही ।

उसने देश-विदेश में व्यापार करना शुरू किया । पृथ्वी पर तो उसका व्यापार खूब फैल ही गया था, किन्तु समुद्र पर हने वाले व्यापार में भी उस समय वह सबसे आगे हो गया दूर-दूर के देशों में जगडू के जहाज जाते और वहाँ पर माल का लेन-देन करके वापस आते थे ।

(२)

एकबार जगडूशाह का जयतसिंह नामक एक मुनीम ईरान देश के होमर्ज नाम के बन्दरगाह पर गया । वहाँ उसने समुद्र के किनारे पर एक बड़ी बखारी किराये पर ली । उसके पास ही की बखारी माल गोदाम व गद्दी खंभात के एक मुसलमान व्यापारी ने ली ।

कुछ दिनों के बाद इन दोनों बखारियों के बीच से एक सुन्दर

पत्थर निकला । जयन्तसिंह कहते थे कि यह पत्थर हमारा है, और वह मुसलमान व्यापारी उसे अपना बतलाता था । यों कहते-सुनते आपस में विवाद छिड़ गया था ।

मुसलमान ने कहा—इस पत्थर के लिए मैं यहां के राजा को एक हजार दीनार दूंगा ।

जयन्तसिंह बोले—मैं दो हजार दीनार दूंगा ।

मुसलमान ने फिर कहा—मैं चार हजार दीनार देकर इस पत्थर को ले लूंगा ।

जयन्तसिंह ने कहा—मैं पूरे एक लाख दीनार इसके बदले में दे दूंगा ।

मुसलमान—मैं अपनी हठ पूरी करने के लिए इसके बदले में दो लाख दीनार दे डालूंगा ।

जयन्तसिंह ने कहा—मैं अपने स्वामी की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये इसके बदले में तीन लाख दीनार देने से भी नहीं चूकूंगा ।

यह सुनकर वह मुसलमान व्यापारी ठंडा पड़ गया । जयन्तसिंह ने तीन लाख दीनार देकर, वह पत्थर खरीद लिया, और उसे जहाज में डाल कर भद्रेश्वर में ले आया ।

किसी ने जाकर जगद्गुहाह से यह समाचार कहा, कि तुम्हारा मुनीम तो बड़ा कमाऊ है ! उसने तीन लाख दीनार देकर बदले में एक पत्थर खरीद लिया है ।

जगद्गुहाह ने उत्तर दिया, कि वह धन्यवाद का पात्र है, उसने तो मेरी इज्जत बढ़ाई है ।

इसके बाद जगद्गुहाह बड़ी धूमधाम से जयन्तसिंह तथा उस पत्थर को अपने घर ले आये । जयन्तसिंह ने सब कथा कह सुनाई और अन्त में कहा कि—“आपकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये ही मैंने इतना रुपया खर्च कर डाला है, अब आपको जो दण्ड देना उचित

प्रतीत हो, मुझे दे सकते हैं” जगडूशाह बोले, कि-“जयन्तसिंह क्या तुम पागल हो गये हो ? तुमने तो मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है, अतः तुम्हें सिरोपाव देना चाहिये, न कि दण्ड ।” यों कहकर एक मूल्यवान पगड़ी और मोतियों की माला पुरस्कार में दे दी ।

वह पत्थर जगडूशाह ने अपने घर के आँगन में जड़वा दिया । एकबार एक जोगी बाबा-जगडूशाह के यहाँ भिक्षा माँगने आये । उन्होंने यह पत्थर देखकर जगडूशाह से कहा-कि “बच्चा ! इस पत्थर में तो बड़े-बड़े मूल्यवान रत्न हैं, अतः तू इसको तोड़ कर उन्हें निकाल ले । जगडूशाह ने उसके कहने के अनुसार उस पत्थर को तोड़कर उसमें से वे रत्न निकाल लिए, जिससे उन्हें पैसों की कमी नहीं रही ।

(३)

जगडूशाह के पास ऋद्धि-सिद्धि तो खूब हो गई, किन्तु उनके कोई पुत्र न था । एक कन्या हुई थी, जो विवाह करते ही विधवा हो गई. इससे उन्हें बड़ा दुःख पहुँचा । किन्तु इस दुःख के रोने न रोककर, उन्होंने धर्म के कार्य करने शुरू कर दिए और आत्मा को शान्ति पहुँचाई ।

(४)

एकबार पठार देश के पीठदेव नामक राजा ने भद्रेश्वर पर चढ़ाई की और शहर को बरबाद कर दिया । बहुत सा धन-माल लूटकर, अन्त में वह अपने देश को वापस लौट गया । यह देखकर, जगडूशाह ने फिर से भद्रेश्वर का किला बनाना शुरू किया ।

अभिमानी पीठदेव ने जब यह समाचार सुना तो उसने जगडूशाह को कहला भेजा—“यदि गंधे के सिर पर सींग उगाना संभव हो तो तुम इस किले को बनवा पाओगे, अन्यथा कभी नहीं ।”

जगडूशाह ने उत्तर दिया कि-“गंधे के सिर पर सींग उगा कर

ही मैं इस किले को बनवाऊँगा।” इसके बाद पीठदेव की जरा भी परवाह किये बिना ही उन्होंने किले का काम जारी रखा। इस किले को दीवारों में उन्होंने एक गधा खुदवाया और उसके सिर पर दो सोने के सींग लगवाये। अब तो बड़े के साथ बैर हो गया था, अतः बैठकर रहने से काम न चलेगा। इसी विचार से जगद्गुहाह गुजरात के राजा विशलदेव से जाकर मिले और उन्हें सारा हाल सुनाकर उनसे एक बड़ी सेना ले आये। इस सेना के आ जाने का समाचार पाकर पीठदेव चुप हो गया और उसने आकर जगद्गुहाह से संधि कर ली।

(५)

जगद्गुहाह के पास अपार-धन था, किन्तु फिर भी उनमें अभिमान का नाम न था। प्रभु-पूजा और गुरु-भक्ति में तो वे बेजोड़ एक ही थे। एक बार गुरुजी ने उनसे कहा कि—“जगडू ! तीन-वर्ष का भयंकर अकाल पड़ने वाला है, अतः तुम अपने धन का अधिक से अधिक सदुपयोग करना।” जगद्गुहाह को इतना इशारा देना ही काफी था। उन्होंने देश-त्रिदेश से अनाज खरीद-खरीदकर गरीबों के लिये कोठे भरवा दिये।”

ठीक संवत् तेरह सौ तेरह १३१३ वर्ष का प्रारम्भ होते ही भयंकर दुष्काल पड़ा। लोग अन्न-अन्न चित्लाते हुए मरने लगे। यह दुष्काल तीनवर्ष तक रहा। इन तीनों वर्षों में भी संवत् तेरह सौ पन्द्रह १३१५ के साल में तो इसका प्रभाव चरम सीमा पर जा पहुँचा था। तेरहसौ पन्द्रह का यह अकाल मशहूर हो गया। कहा जाता है कि इसके बाद फिर कभी वैसा दुष्काल नहीं पड़ा। उस समय मंहगाई की यह दशा थी, कि चार आने में सिर्फ तेरह चने मिलते थे। अपने बच्चों को भूतकर खाने जैसे वीभत्स कार्य के उदाहरण भी इसी समय मिलते हैं।

ऐसे भयंकर दुष्काल में से जनताको बचाने के लिये जगद्गुहाह ने देश

देश के राजाओं को अनाज उधार दिया। किसी को बारह हजार बोरी, किसी को अठारह हजार बोरी, किसी को इक्कीस हजार और किसी को बत्तीस हजार बोरी। इस तरह नौ लाख और निम्नानवें हजार बोरी अनाज उन्होंने राजा लोगों को उधार दिया।

किन्तु दानवीरों का साहस क्या इतना ही कर के समाप्त हो सकता है ? जगद्धशाह ने इसके बाद एक सौ बारह ११२ सदाब्रत-दान शालायें खोलीं, जिनमें सदैव पांच लाख मनुष्य भोजन करते थे।

इस मौके पर उन्होंने खुले हाथ इतना अधिक दान दिया कि लोग उन्हें धनकुबेर कहने लगे। वास्तव में जगद्धशाह की यह उदारता धन्य है।

उनकी इस उदारता ने जैन-धर्म को समस्त भारत में चमका दिया। लोगों को यह बात मालूम होगई कि 'जैन' शब्द का वास्तविक अर्थ है—जगत भर को दया पालने वाला। जीव को मरने से बचाने वाला।

उन्होंने तीन बार बड़े-बड़े संघ निकाल कर पवित्र तीर्थ शत्रु-क्षय की यात्रायें कीं। भद्रेश्वर का बड़ा मन्दिर बनवाया और अन्य भी छोटे-बड़े मन्दिरों की रचना करवाई। कहा जाता है कि उन्होंने कुल एक सौ आठ १०८ मन्दिर बनवाये।

इसके अतिरिक्त उन्होंने भद्रेश्वर में खीमली नामक एक मस्जिद भी बनवाई। यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जगद्धशाह के समान जैन धार्मिक मनुष्य ने यह मस्जिद क्यों बनवाई ? तो उत्तर यह है कि जगद्धशाह एक बहुत बड़े व्यापारी थे। उनके यहां देश-विदेश से व्यापारी लोग आया करते थे। इन व्यापारियों में बहुत से मुसलमान व्यापारी भी होते थे। इन लोगों को नमाज-बन्दगी आदि कार्यों में मस्जिद के बिना बड़ी अड़चन पड़ा करती थी। अपने घर पर आये. हुये महमान को यदि किसी प्रकार की

असुविधा पड़े तो घर वाले का गृहस्थ-धर्म नष्ट होता है। यही सोचकर उन्होने मस्जिद बनवाई थी। इसी मस्जिद में जाकर उनके सब मुसलमान-महमान खुदा की बन्दगी किया करते थे।

गुजरात के धन कुबेर जगडूशाह, इसी प्रकार बड़े-बड़े कार्य कर चुकने पर स्वर्ग-लोक को चले गये। जगडूशाह के भाई इस समय बड़ा दुख करने लगे, किन्तु गुहजी के उपदेश को सुनकर उनके हृदयों में शान्ति मिली।

उस काल में जगडूशाह के समान और कोई दान-वीर नहीं हुआ।

जगडूशाह—'जगत के रक्षणहार' के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्होंने दुष्काल के समय अपूर्व उदारता दानशीलता का परिचय दिया। ऐसे से दानवीरों ही जैन समाज गौरवान्वित है।

समय समय पर और अनेक बार भारत के विविध क्षेत्रों में दुष्काल पड़े, उनमें जैन समाज के नररत्नों ने दिल खोलकर धन खर्च कर जन-संरक्षण किया। जैन धर्म का गौरव बढ़ाने वाली यह भव्य परम्परा निरन्तर चालू रहे, यही शुभ कामना है।

१६ सच्चाशाह खेमा-देदराणी

(१)

चम्पानेर के नगर सेठ चांपसी मेहता और सादुलखान उमराव, दोनों एक दिन साथ ही साथ राज दरबार को जा रहे थे। इन्हें रास्ते में एक भाट मिला। उसने नगर सेठ की बड़ी शोभा की और अन्त में कहा, कि—‘पहले शाह, पीछे बादशाह।’ भाट के मुँह से यह बात सुनकर सादुलखान को बड़ा बुरा मालूम हुआ। उसने दरबार में पहुँच कर बादशाह महमूद बेगडा से चुगली खाई, कि “हज़ूर आली ! यह भिखमंगा भाट टुकड़ा तो आपका दिया हुआ खाता है और तारीफ करता है चांपसी मेहता की। आज इसने तारीफ करते करते उन्हें भले शाह बादशाह तक कह डाला।”

बादशाह ने हुक्म दिया, कि—“भाट को बुलवाओ।” भाट के हाज़िर होने पर बादशाह ने उससे पूछा—कि “अरे बंबभाट तू इस बनिये की इतनी तारीफ क्यों करता है ?” बंबभाट ने, उत्तर दिया कि—“गरीब परवर ! उसके बाप-दादों ने बहुत बड़े बड़े काम किये हैं। मैंने इनकी जो प्रशंसा की है, वह बिलकुल ठीक ही है।”

बादशाह ने फिर पूछा—“क्या वे शाह, बादशाह के समान हैं ?”

बंबभाट ने निवेदन किया, कि—“हां खुदाबन्द ! जिस प्रकार आप दुनिया का पालन कर सकते हैं, उसी प्रकार वे भी उसे जीवित रख सकते हैं। जब संवत् तेरह सौ पन्द्रह (१३१५) का भयंकर अकाल पड़ा था तब जगडूशाह ने ही दुनियाँ को जिलाया था।

बादशाह ने कहा, कि—“ठीक, तुम जा सकते हो।” बंबभाट

चला गया। बादशाह ने अपने मन में यह निश्चय किया, कि मौका पाते ही भाट की इस तारीफ को झूठी साबित करनी चाहिये।

(२)

गुजरात में भयंकर अकाल पड़ा। न तो पशुओं के लिए घास ही मिलती थी और न मनुष्यों के लिये अन्न-वस्त्र। पशुओं की मृत्यु होने लगी और मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड “अन्न-वस्त्र” चिल्लाते हुए इधर-उधर दौड़ते दिखाई देने लगे।

बादशाह को जब यह हाल मालूम हुआ तो उन्होंने तय किया, कि इस समय नगर--सेठ की परीक्षा लेनी चाहिये। अतः उन्होंने बंबभाट को बुलाया और उससे कहा, कि--“बंब, यदि चांपसी मेहता शाह—बादशाह के समान हो, तो एक वर्ष तक सारे गुजरात को अन्न-वस्त्र, देकर जीवित रखें। यदि वे ऐसा न कर सकें, तो शाह कहने वाले तथा कहलाने वाले, दोनों को अपराधी समझा जावेगा।”

भाट ने कहा--“जो हुक्म।”

उसने चांपसी मेहता के पास आकर उनसे यह बात कही, कि--बादशाह ने आज मुझसे यह शर्त ठहराई है, कि यदि चांपसी मेहता गुजरात का एक वर्ष पालन कर सके तो वे सच्चे शाह हैं। नहीं तो शाह कहने और कहलाने वाले दोनों ही अपराधी माने जाकर दण्ड के भागी होंगे।

चांपसी मेहता ने कहा--“इसके लिये तुम फिर जाकर एक महिने की मुहलत मांग आओ। मास के अन्त में, महाजन-वर्ग या तो एक वर्ष तक गुजरात को जिलाने का जिम्मा ले लेगा अथवा ‘शाह’ पदवी छोड़ देगा।”

भाट ने वापस जाकर एक महिने की मुहलत मांगी। बादशाह ने, इसे स्वीकार कर लिया।

(३)

अब चांपसी मेहता ने महाजनों को एकत्रित किया और उन्हें सब हाल कह सुनाया। महाजनों ने कहा कि—“इसके लिए चन्दा करना चाहिए।” तत्क्षण चांपानेर के सेठ साहूकारों की एक लिस्ट बनाई और लोग अपने-अपने नामों के सामने दिनों की संख्या लिखने लगे, कि कौन कितने दिनों का खर्च देंगे। जब सब लोग लिख चुके तो, जोड़ लगाने पर मालूम हुआ अभी तो सिर्फ चार ही महीने के खर्च की व्यवस्था हुई है। शेष आठ महिनों के लिये क्या करें ? अन्त में दूसरे ग्रामों से सहायता लेने के लिए जाना निश्चय हुआ।

पाटण उस समय बड़ा भारी शहर था। उसमें बड़े-बड़े सेठ साहूकार तथा श्रीमन्त लोग रहते थे चांपसी मेहता तथा कुछ अन्य प्रतिष्ठित लोग पाटण को चले। पाटण के महाजनों ने इनका बड़ा स्वागत सत्कार किया और सबने एकत्रित होकर चंदे की फेहरिस्त तैयार की। यहां दो महिनों के खर्च की व्यवस्था हो गई। फिर यह लोग धोलका आये, जहां दस लिखे गये।

इस तरह चंदे की लिस्ट बनाने में इन्हें बीस दिन तो लग गये, शेष केवल १० दिन और रहे। इन दस दिनों में ही, धोलका से चांपानेर पहुँचना था, अतः महाजन लोग धन्धुके जाने के लिये तेजी से चल पड़े। रास्ते में हडाला नामक एक गाँव आया।

हडाला में खेमा नामक एक श्रावक रहता था। इसे यह बात मालूम हुई, कि चांपानेर के महाजन लोग मेरे गाँव के पास से होकर जा रहे हैं। अतः वह दौड़ता हुआ गाँव से बाहर आया और हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करने लगा कि—“मेरी एक नम्र विनती है स्वीकार कीजिये।” चांपसी मेहता तथा अन्य लोग, इस फटेहाल बनिये को देखकर मन में बड़े परेशान हुए और सोचने लगे, कि—“हम जहां जाते हैं, वहाँ मांगने वालों का तांता सा लग जाता है। इस भाई को और न मालूम क्या प्रार्थना करनी है ? यों सोचकर

उन्होंने खेमा से कहा—“अवसर देखकर जो कुछ माँगना हो वह माँगो।”

खेमा ने कहा, कि—“कलेवा करने को मेरे यहाँ पधारिये।”

चाँपसी मेहता को निश्चिन्तता हुई कि इसे किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं है। फिर उन्होंने जवाब दिया कि—“भाई हम लोगों को घड़ी भर भी ठहरने का अवकाश नहीं है। हम बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं।”

खेमा ने फिर कहा—“चाहे जो हो, किन्तु आप अपने धर्म-बन्धु का आंगन अवश्य पवित्र कीजिए। ठीक कलेवा के समय पर आपका यहाँ से यों ही जाना कदापि सम्भव नहीं हो सकता।”

स्वधर्मो-भाई का निमन्त्रण ठुकराया नहीं जा सकता था, अतः सब लोग कलेवा के लिए खेमा के यहाँ गये।

खेमा ने रोटी और दही का नाश्ता करवाया। नाश्ते के बाद महाजनों ने खेमा से जाने की स्वीकृति चाही।

खेमा ने कहा—“सेठ साहब ! अब भोजन करने के समय में थोड़ी देर और है। कुछ देर में ही गरमागरम भोजन तैयार हुआ जाता है, इसे जीमकर आप प्रसन्नता पूर्वक पधारियेगा।

खेमा ने हलुआ-पूड़ी तथा भुजिए-पकौड़ी आदि षक्वान तैयार करवाये और उन लोगों को बड़े प्रेम से भोजन करवाया। भोजन कर चुकने पर खेमा ने उनसे पूछा कि—“आप लोग किस कार्य के लिए बाहर निकले हैं ?” सेठों ने सारी कथा कह सुनाई। और फेहरस्त में खेमा का नाम लिख कर वह खेमा के आगे रख दी। खेमा को उस लिस्ट में अपना नाम देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उससे कहा कि—“मैं अपने पिता से पूछकर जवाब देता हूँ।

खेमा अपने बूढ़े पिता, देदराणी के पास गया और उसने उनसे

सब हाल कह सुनाया। देदराणी ने कहा—“कि बेटा, धन आज तक न तो किसी के साथ गया है और न जायेगा। पैसा फिर लौटकर मिल सकता है, किन्तु अच्छा-मौका बार-बार नहीं आता। यह तो घर बैठे गंगा आ गई है, अतः तू इससे जितना भी लाभ उठा सके, उठा ले।” खेमा ने फहरिस्त में अपने नाम के सामने ३६० दिन लिखकर उसे चांपसी मेहता के हाथ पर रख दिया।

यह देखकर सबके सब भौंचक्के से रह गए। वे सोचने लगे कि कहीं खेमा के सिर पर पागलपन तो सवार नहीं है? फिर चांपसी-मेहता बोले, कि खेमा सेठ जरा विचार कर लिखिए।”

खेमा सेठ बोले—कि—“मैंने तो बहुत थोड़ा ही लिखा है। सेठ साहब, आप कृपा करके इसे तो रहने ही दीजिए। फिर खेमा उन लोगों को झोंपड़े की तरह दिखाई देने वाले, अपने घर में ले गया। घर के भीतर एक गुफा थी, जिसमें ले जाकर उसने वहाँ भरो हुई अपनी सम्पत्ति दिखलाई।

सब लोग उस सम्पत्ति को देखकर आश्चर्य करने लगे और सोचने लगे कि “ओहो, इतने अधिक धन का स्वामी और इस देश में? और ऐसे घर में? खेमा! तू धन्य है, कि इतनी भारी सम्पदा होने पर भी तुझे जरा सा अभिमान अथवा मस्ती नहीं है।

फिर सबने खेमा से कहा, कि खेमा सेठ! अब इन कपड़ों को उतार डालो और अच्छे कपड़े पहिन लो! क्योंकि अब आपको बादशाह के सामने जाना है। खेमा ने उत्तर दिया, कि—“बादशाह के सामने जाने के लिए, तड़क-भड़क दार कपड़े पहिनने की क्या आवश्यकता है? सेठ जी हम ग्रामीण लोग इसी पोशाक में अच्छे मालूम होते हैं। हमारे लिए शाल-दुशालों की आवश्यकता नहीं है।”

चांपसी मेहता ने कहा कि—“सचमुच सेठ तो आप ही हैं, हम लोग तो केवल आपके गुमाश्ते हैं” इसके बाद खेमा सेठ को पालकी

में बैठाकर, चांपानेर ले गए । दूसरे दिन, चांपसी मेहता तथा अन्य महाजन लोग, खेमा सेठ को लेकर कचहरी में पहुँचे ।

खेमा सेठ ने तो वही अपना फटा टूटा कुर्ता पहन रखा था, तथा फटी हुई पगड़ी सिर पर बाँध रखी थी, और हाथ में एक छोटी सी गठरी लिए हुए थे ।

चांपसी मेहता ने बादशाह से कहा, कि—“ये सेठ गुजरात को ३६० दिनों के लिए मुफ्त अन्न देंगे ।” बादशाह इस मँले-कुचले बनिए को देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गए । उन्होंने खेमा से पूछा कि—“तुम्हारे कितने गांव हैं ?”

खेमा ने कहा—“केवल दो ।”

बादशाह—कौन-कौन से ?

खेमा सेठ ने अपनी गठरी खोलकर उसमें से एक पली तथा तराजू निकाली और बादशाह से कहा, कि—“एक तो यह पली है दूसरी है तराजू । इसी पली से तो हम घी तेल बेचते हैं और तराजू से अनाज खरीदते हैं ।”

बादशाह, यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए और खेमा सेठ की बड़ी तारीफ की ।

खेमाशाह ने एक वर्ष तक सारे गुजरात को मुफ्त में अनाज बाँटा, जिससे लाखों मनुष्य भूखों मरने से बच गये और खेमाशाह को आशीर्वाद देने लगे ।

खेमाशाह की उदार-दानशीलता धन्य है ।

धीरे-धीरे गुजरात से वह दुष्काल दूर हो गया । अब खेमाशाह ने शत्रुञ्जय की यात्रा की, फिर पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने अपनी आयु पूर्ण की । इसी दानवीर के समय से—यह कहा-वत चली है, कि—“व्योपारी है पहला शाह, दूजा शाह बादशाह ।” पहले शाह, फिर बादशाह !

२०- दानवीर भामाशाह

(१)

मैवाड़ के राणा प्रताप का नाम कौन नहीं जानता ? वे अपनी आन के और बात के पक्के थे । कभी एक शब्द भी मिथ्या न बोलते, और जो कहते उससे कभी फिरते न थे । साधु के समान सरल और सिंह समान वीर थे । दीन दुखियों के सहायक और अनाथों के नाथ थे । उनके एक-मन्त्री का नाम 'भामाशाह' था । पहुँची हुई उमर, सफेद दाढ़ी, विशाल मस्तक और तेज-पुंज मुख-मण्डल देखते ही श्रद्धा से लोगों का मस्तक झुक जाता था । कहने के लिये वृद्ध थे, पर युवकों को सात करते थे । बुद्धि के भंडार, शक्ति के सागर थे ।

राज्य में कोई प्रश्न उपस्थित हो, प्रजा को कोई कठिनाई आ पड़े, सबका निराकरण करने वाले थे-भामाशाह । किसी को न्याय चाहना है, जाओ भामाशाह के पास । किसी को सत्परामर्श की आवश्यकता है, जाओ भामाशाह के पास । कोई किसी कठिनाई में आ पड़ा है, जाओ भामाशाह के पास । सब उसका आदर सम्मान करते थे, और वह सबका शुभचिन्तक था ।

राजा प्रताप भी पग-पग पर उनका परामर्श लेते थे । उनकी बुद्धि और शक्ति में सबको विश्वास था । राज-काज हो या घर की कोई बात, सभी बातों में भामाशाह का कहना चलता था ।

दिल्ली के बादशाह अकबर के साथ राणा प्रताप की शत्रुता थी । अकबर जितना, बलवान था उतना ही नीति कुशल था । बड़े-बड़े राजों को उसने वशीभूत कर लिया था । परन्तु प्रताप ने उसके सामने सिर नहीं झुकाया । अकबर ने बहुतेरे यत्न किये । पर राणा

पर काबू न चला, सो न चला उसके मन में यह हसरत साध थी कि चाहे जो हो प्रताप को अवश्य आधीन करना चाहिये ।

मेवाड़ में चित्तौड़ का किला एक प्रख्यात और बड़ा मजबूत किला माना जाता था । अकबर ने राणा प्रताप के पिता से वह किला ले लिया था । प्रताप ने निश्चय किया—यह किला न लूँ तो मेरा नाम प्रताप नहीं । व्रत लिया जब तक किला वापस न ले लूँगा, तब तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा घास के बिछोने पर सोऊँगा, पत्तों में भोजन करूँगा । और दाढ़ी में कंधी न करूँगा । आहा ! कितनी कठोर प्रतिज्ञा थी ?

(२)

भामाशाह ने भी निश्चय किया, जो व्रत राणा ने लिया है वही मैं भी लूँगा । अरे, हमारे देवतुल्य राणा तो सोयें घास पर, और हम गद्दे पर—यह कैसे हो सकता है ? वे खाये पत्तल पर और हम थाली में, यह नहीं हो सकता ।

राणा के कुटुम्बियों ने भी भामाशाह का अनुकरण किया । अकबर राणा प्रताप पर विजय पाने का अवसर सदैव ही खोजता रहता था । एक बार, उसने उसके मुकाबले के लिये एक बड़ी सेना भेजी हाथी, घोड़े और ऊँटों की गिनती न थी, पैदल सेना की शुमार न थी । शाहजादा सलीम सेनापती था, और राजा मानसिंह उसका सहायक ।

भामाशाह को इसका पता चल गया । वे घोड़े पर सवार होकर तुरंत राणा के पास पहुँचे और नमस्कार करके कहा—महाराज ! जल्दी तैयार हो जाइये । शत्रु ने भारी लश्कर लेकर चढ़ाई कर दी है अब देर न कीजिये ।

राणा प्रताप ने कहा—अच्छा, भामाशाह ! तुम जाकर लश्कर

यार करो और नगर में मनादी घोषणा करा दो—“जिसके हृदय देश का दर्द हो, मातृभूमि का प्रेम हो, जो सच्चा वीर हो, वह राजमहल के चौक में जल्द हाजिर हो जाय।”

भामाशाह ने घोड़े को एँडू लगाई, घोड़ा सरपट हो गया। लोग देखकर आश्चर्य करने लगे, कि यह बुढ़ा है या जवान? जिसने भामाशाह को देखा, लड़ाई के जोश से भर गया।

भामाशाह ने सरदारों और सेनापतियों को समाचार दिया, गर में मनादी घोषणा करादी। लोग राजमहल के पास वाले मैदान जमा होने लगे। बात की बात में ६००० वीर जान पर खेलने के तैयार हो गये।

अपने सजे हुए घोड़े पर सवार होकर राणा प्रताप भी आ पहुँचे। वीर पर लोहे का कवच है, हाथ में भयंकर भाला है, कमर में दो लवारें लटक रही हैं। राणा वीरता की साक्षात्मूर्ति दिखलाई दे रहे हैं। कायर का हृदय भी उन्हें देखकर उमंग से भर जाता है।

राणा के आते ही आकाश जयनाद से गूँज उठा— ‘महाराणा की जय’! मातृभूमि की जय!! राणा ने सबको वीरोचित स्वर सम्बोधित किया—वोर पुत्रो! न हम किसी को गुलाम बनाना चाहते हैं, न किसी का राज्य छीनना चाहते हैं। हम मातृभूमि की आधीनता के लिये, मान रक्षा के लिये लड़ने को, वलिदान होने के तैयार हो रहे हैं। सत्य हमारे साथ है, ईश्वर हमारा सहायक है। हमारी अवश्य विजय होगी। दोनों ओर के लश्कर आमने-सामने आये। डंके पर चोट पड़ी। वीरों के हृदय उछल पड़े। तलवारें सनाने लगीं। हल्दीघाटी के रणक्षेत्र में तुमल युद्ध होने लगा। वीरों का जान हथेली पर रख ली। लहू की नदियाँ बह चलीं, लाशों के खार लग गये। ओह, कितना भयंकर युद्ध था, कितना प्रयत्न विकराल था!

भामाशाह की तलवार भी गजब ढा रही थी। मूलो-गाजर की तरह शत्रुओं के सिर काटती और रास्ता साफ करती जाती थी। इनकी शक्ति अद्भुत थी, रणकौशल अद्वितीय था, वीर्य अपूर्व थी।

समय का फेर है। राणा की पराजय के लक्षण दीखने लगे। भामाशाह ने कहा-महाराज ! आप यहाँ से हट जाइये, आपका जीवन रहेगा तो फिर लड़ेंगे, इस समय हट जाना उचित है।

प्रताप ने उत्तर दिया-नहीं, भामाशाह, यह नहीं हो सकता। क्षत्रिय कहीं रणक्षेत्र से पैर हटाते हैं ? मरना तो है ही, यहीं मरूँगे इतने ही मैं वहाँ दूसरे सरदार भी आगये। सबने समझा-बुझाकर राणा को वहाँ से अलग कर दिया। सब कुंभलमेर के किले में जमा हो गये। शत्रु ने चिढ़कर कुएँ में विष डलवा दिया। नीचता की हकीकत हो गई।

नगर में हा-हा कार मच गया। पानी पी-पी बालक, वृद्ध स्त्री, पुरुष बिना मौत मरने लगे। पानी के बिना काम भी कैसे चले एक भारी मुसीबत आ खड़ी हुई। क्या करें और क्या न करें, किन्हीं को कोई मार्ग न सूझा।

भामाशाह ने कहा—महाराज ! यह किला खाली बंद दीजिये। हमारे यहाँ से अन्यत्र चले जाने पर शत्रु प्रजा को अधि कष्ट न देंगे। प्रताप ने कहा—भामाशाह ! मेरी बुद्धि काम न देती, तुम्हें उचित प्रतीत हो सो करो।

महाराणा ने रानी और बालक तथा भामाशाह और थोड़े सैनिकों को साथ लिया और चल पड़े। नगर में शोक छा गया। वह टोली चलकर चम्बल प्रदेश में पहुँची। यह प्रदेश अत्यन्त सुन्दर और मनोहर था। आस-पास अरावली पर्वत की श्रेणियाँ

बड़े वृक्ष आकाश से बातें कर रहे हैं। हरी-हरी घास का कोमल पठोना बिछा है। देखते ही आंखों में ठंडक और हृदय में शान्ति पति है।

शत्रुओं ने उनका पीछा किया। फिर युद्ध हुआ। घड़ से सिर लग होने लगे। हण्ड मुण्ड भूमि पर लुढ़कने लगे। फिर हा-हा कार म गया।

महाराणा और भामाशाह जीवन का मोह छोड़कर झुझ हैं। दोनों हाथों में दुधारी तलवारें हैं। इस समय की उनकी रमूर्ति और रणकौशल देखने ही योग्य था। इसी बीच में शत्रु एक सरदार मौका पाकर प्रताप के पीछे आया। वह पीछे से करना ही चाहता था कि भामाशाह ने उसे देखा और पलक रते ही वहाँ जा पहुँचा। अपनी तलवार पर वार रोक लिया। ाड़ का सूर्य अस्त होते होते रह गया। राणा के प्राण बच गये। षु भाग खड़े हुए।

प्रताप ने कहा - भामाशाह ! तुम वीर शिरोमणि हो। आज ने ही मेरी जान बचाई है। तुमने ही विजय दिलाई है। इस जय के यश के अधिकारी तुम्हीं हो।

भामाशाह ने उत्तर दिया - नहीं, महाराणा ! मैंने तो अपना व्य पालन किया है। यश तो आपकी सूर-वीरता का ही है।

इस युद्ध में राणा की विजय तो अवश्य हुई, परन्तु उसके पास के नाम पर एक फूटी-कौड़ी न रही। न कोई सैनिक ही बचा। जंगल में चले गये।

जंगल में अनाज कहां से मिले ? सेवक जंगल के फल-फूल ले थे। सब उन्हीं पर गुजारा करते थे। झरने का पानी पीते और आकाश के नीचे भूमि पर सो रहते थे। कुदरत का खेल है। राणा और महामन्त्री जंगल में भटकते हैं। न रहने को घर है, ाने को अन्न।

कभी कभी तो ज्यों ही खाने बैठते त्यों ही समाचार मिलता शत्रु आ गये, पास ही आ पहुँचे हैं, सब खाना पीना भूल जाते थे बीच में ही उठकर भागना पड़ता था। ऐसे कठिन समय पर भी भामाशाह निराश न होते थे। सबको धीरज बँधाते और कहते थे— प्रभु सब भला करेंगे, मुसोबत के समय भामाशाह ने कभी महाराण का साथ नहीं छोड़ा, जहाँ राणा, वहाँ भामाशाह। उनका तो निश्चय ही था—जो दशा राणा को, वही मेरी, जहाँ राणा, वहीं मैं, धन्य है भामाशाह की स्वामि भक्ति।

घना जंगल है ऊँचे ऊँचे पहाड़ आकाश से बातें करते हैं गहरी-गहरी खाईयाँ और खड्डे-पाताल का रास्ता दिखलाते हैं सिंह और चीते की गर्जना अच्छे-अच्छों का दिल दहलाती है। इस भयानक वन में राणा अपने साथियों के साथ रहते हैं।

दोपहर का समय है, सूरज सिर पर है। प्रताप और भामाशाह एक पेड़ के नीचे बंठे बातें कर रहे हैं। राणा ने कहा—भामाशाह, यहाँ का जीवन कितना शान्तिमय है? फल फूल खाना, झरन का पानी पीना, पहाड़ों पर घूमना और भूमि पर सो रहना। न लड़ाई है न झगड़ा। न राज की खटपट है, न युद्ध की मारकाट। जो चाहत है बस यहीं रहें और प्रभु का भजन करें।

भामाशाह ने कहा—राणाजी, आप तो संत जैसे हैं। आपका राजपाट का क्या लोभ? ऐश-आराम की क्या लालसा? परन्तु आप यहीं जीवन बितायें तो मेवाड़ का उद्धार कौन करेगा?

ये बातें हो ही रहीं थीं कि इतने ही में एक सेवक ने खबर दी—महाराज, शत्रु आरहे हैं।

प्रताप ने कहा—लो भामाशाह हो चुकी शान्ति की बातें...अ क्या करें? सेना हो तो युद्ध कर सकते हैं। धन हो तो सैनिक आ सकें

हैं। परन्तु अफसोस, मेरे पास तो कुछ भी नहीं। भामाशाह—“बस हो गया। मातृभूमि का उद्धार। अबतो मन मसोस कर रह जाने के सिवा और क्या चारा है? तुमने मेरी बहुत सेवा की है। तुम्हारा अहसान मैं भूल नहीं सकता। अब जाओ तुम देश में जाकर रहो। मैं सिन्धु के उस पार जाकर गुप्त रूप से जीवन बिता दूंगा। मातृभूमि, तुम्हें अन्तिम नमस्कार है। क्षमा करना जननी! राजा तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका।

भामाशाह की आंखों में आंसू आगये। कण्ठ हक गया। थोड़ी देर बाद धैर्य धारण करके उन्होंने कहा—महाराणा! मेवाड़ को स्वाधीन तो करना ही है। क्या मातृभूमि को ऐसे ही छोड़ जाओगे? नहीं, महाराज उसे स्वाधीन करना ही होगा।

प्रताप ने कहा—भामाशाह, अब विजय की कोई आशा नहीं शक्ति ही कहां है? अब भाग जाना ही उचित है।

भामाशाह ने नम्रता पूर्वक कहा—महाराज, आप चिन्ता न कीजिये, हिम्मत न हारिये, मेरे पूर्वजों ने यथेष्ट धन संग्रह किया है। आप सेना अंकित कीजिये।

प्रताप ने उत्तर दिया—यह कैसे हो सकता है? क्या मैं प्रजा का धन ले सकता हूँ? राजा को और देना चाहिये न कि लेना?

भामाशाह ने कहा—महाराज, मैं आपको नहीं देता, अपनी प्रिय जन्मभूमि के लिये अर्पण करता हूँ, मातृभूमि के लिये तो मैं मरने के लिये भी तैयार हूँ फिर धन किस गणना में है? ऐसे समय में भी काम न आवे तो वह धन किस काम का?

महाराणा ने कहा—भामाशाह—तुम्हारा देश-प्रेम और उदारता धन्य है। तुमने जैन धर्म के नाम को उज्ज्वल किया है। जैन समाज को देश-भक्ति का पाठ पढ़ाया है। मेवाड़ की विजय का श्रेय तुम्हें ही मिलेगा। आज से तुम सेनापति के पद को सुशोभित करो। चलो, सेना तैयार करें।

सेना की भरती होने लगी। दूर से वीर आने लगे। सब अपने कर्तव्य में अनूठे थे। कोई तलवार का धनी था तो कोई तीर से निशाना लगाने में कुशल, बूढ़ों में भी युवकों का बल था। मातृभूमि पर मर मिटने को चाह थी। बात की बात में एक बड़ी सेना तैयार हो गई।

भामाशाह ने कमर कसी, इस युद्ध वीर का उत्साह और उमंग युवकों को भी मात करता था। उनकी मौजूदगी में निराशा और कायरता ठहर नहीं सकती थी।

धीरे-धीरे महाराणा एक के बाद एक किल्ला जीतने लगे। शेरपुर के बाद दिलवाड़े का नम्बर आया। दिलवाड़े में भयंकर युद्ध हुआ। शत्रु के सरदार शाहवाजखाँ के साथ भामाशाह का द्वन्द्व युद्ध हुआ। भामाशाह ने एक ही झटके में उसके हाथ काट डाले और साथ ही उसकी तलवार के भी टुकड़े उड़ा दिये, बेचारे को जान बचाकर भागना पड़ा। इसके बाद भामाशाह ने कुंभलमेर पर विजय प्राप्त की, भामाशाह के त्याग (महाराणा को धनदान) एवं दान वीरता तो सर्व विदित है पर वे युद्ध वीर भी था।

इस प्रकार बहुत से किल्लों पर विजय प्राप्त हुई। बहुत से नगर राणा के कबजे में आ गये। लगभग समस्त मेवाड़ पर राणा की विजय पताका फहराने लगी। परन्तु चित्तौड़, अजमेर, मांडवगढ़ पर अब भी अकबर का ही अधिकार रहा। भामाशाह का भाई ताराचन्द कावेडिया भी बड़ा वीर था।

राणा प्रताप ने एक बड़ा दरबार किया। उसमें सभी को यथावत् योग्य सम्मान दिया गया। किसी को जागीर, किसी को पदवी, किसी को पगड़ी, और किसी को पालकी दो गई। सबकी सेवा और वीरता की प्रशंसा की गई। भामाशाह के विषय में राणा ने कहा—भामाशाह तो एक आद्वैतीय त्यागी हैं, अद्भुत वीर हैं और अपूर्व देशभक्त हैं।

है। वास्तव में मेवाड़ तो भामाशाह ने ही जीता है। संसार में इनकी कीर्ति अमर रहेगी। मैं इन्हें भाग्य विधायक तथा 'मेवाड़ उद्धारक' की उपाधि देता हूँ। हर्षवर्धन के साथ सबके मुँह से निकल गया धन्य है भामाशाह, धन्य है इनका त्याग और धन्य है इनकी देश भक्ति।

भामाशाह ने नम्रता से खड़े होकर कहा—मैंने कुछ भी प्रशंसीय सेवा नहीं की। पर महाराणा की सज्जनता और आप सबकी उदारता है जो मेरी तुच्छ सेवा का इतना आदर कर रहे हैं। कर्तव्य पालन के लिए प्रशंसा की क्या आवश्यकता है? मातृभूमि के लिए जितना त्याग किया जाय, थोड़ा ही है। बोलो मातृभूमि की जय !

मातृभूमि की जय, महाराजा की जय, मेवाड़ के पुनरुद्धारक वीरभामाशाह की जय के गगनभेदी घोषों से आकाश गूँज उठा। भामाशाह की स्वदेश भक्ति, भामाशाह का त्याग जिनके हृदयों पर अंकित है वे भी सत्य हैं।

❀ भामाशाह-प्रशंसा ❀

मन्त्री की स्वामि भक्ति, प्रकट लख तथा, देश आत्म त्याग,
बोले राणा प्रतापी कंचन वर पुनः, तुष्ट हो सानुराग—
"मन्त्री पा होगया मैं, सुचतुर तुम सा, आज भामा ! कृतार्थ
भेजा क्या मातृ-भू ने, चुन कर तुमको, देश रक्षा हितार्थ ॥ ३५

लोटे राणा वहीं से, परिजन सह ले, साथ में मन्त्रिराज,
जाने से यों बचायी, सचिव-सुमोत ने, आर्य-भू लाज आज।
पूजा के योग्य तू है, बणिक सचिव श्री, शील की मूर्ति तू है।
है आहा ! धन्य तेरा वह धन, जननी-भक्ति की मूर्ति तू है ॥ ३६

इतना था वह धन तव, हो सकता था जिससे, भामाशाह !
बारह वर्षों तक पच्चीस-हजार मनुष्यों का निर्वाह !

तुझ से स्वामी भक्त चतुर मन्त्रीवर आत्मत्यागी बीर !
 भारत में क्या दुर्लभ है इस बसुंधा में भी धार्मिक धीर ॥ ३७
 'मेवाड़ गाथा' ले० पाण्डेय लोचनप्रसाद
 प्र० हरिदास एण्ड कम्पनी सन् १९१७

❀ मनहर ❀

कहे भामाशाह जन्मभूमि में विपति परी,
 तिहि को बिलोकि प्रभु ! कैसे लुकि जाऊँ मैं ।
 आज मम देश और स्वामि की करन सेवा,
 कृपा के निधान नृप ! कैसे रुकि जाऊँ मैं ॥
 स्वामि-काज सारन को देश कष्ट टारन को,
 औसर महान ऐसी कैसे चूकि जाऊँ मैं,
 बित्त अनुसार आज सेवा ही बजाऊँ कहा ?
 मालिक के हेतु नाथ ! ऊभो बिकि जाऊँ मैं ॥८॥
 दोहा—कहिय शाह संग्रह कियो, करि मन्त्री पन काम ।
 यह धन है सब रावरो, मेरो केवल नाम ॥१२॥
 कहत प्रताप मन बानी तैं हजार वार,
 ऐसे दास को तो उपकार माननों परै ॥
 (प्रताप चरित्र ले० ठाकुर केसरीसिंह बारहठ)
 २० सं० १९८१ वि० प्र० ओसवाल प्रेस कलकत्ता

❀ मन्त्री भामाशाह ❀

देश सुरक्षा हित दिया, प्रमुदित द्रव्य अपार ।
 धन्य २ मन्त्री प्रवर, भामा परम उदार ॥६७॥
 भामा ने सब कोष को, दिया देश पर वार ।
 सैनिक बन रण रत हुआ, वह कुबेर मेवार ॥६८॥
 मेवाड़-वीर-सतसई, ले०—जगदीशचन्द्र, शर्मा मलासा



